

संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ.

—: लेखक :-

पं० जनार्दन भट्ट एम० ए०

प्रकाशक:

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

१२६, हरिसनरोड,

कलकत्ता ।

—*—

मुद्रक—

महावीर प्रसाद पोद्दार

“दैनिक प्रेस”

६०, मिर्जापुर स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसचरोड,

कलकत्ता ।

निवेदन

—७१५—

इस सप्रहकी सैर करके मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। प्रायः सभी श्लोक अनोखे हैं और अनेक प्रियोंके हैं। शृङ्गाररसकी उत्थिता अनोखी होनेपर भी उद्वेगजनक नहीं। भाषार्थ लिख देनेसे केवल हिन्दी जाननेवाले भी इससे आनन्दप्राप्ति कर सकेंगे। श्लोक कण्ठ करने लायक हैं। लौगीकी रुचि सम्पन्नकी ओर बढ़ रही है। इस दशामें, आशा है, सभी सर्वसाधारण जन इसे बहुत पसन्द करेंगे। यह मेरी सच्ची राय है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

गये अपने हृदय को ढूँढ़ रहे हैं ! लक्ष्मी ने उनके (हरि के) हृदय को चुरा कर अपने ही हृदयमें कहीं रखवा होगा, उसे ढूँढ़नेके लिए मानों वह वहाँ पर हाथ से टटोल रहे हैं ।

मक्खन चुराकर बालक कृष्ण किसी अन्धेरे स्थानमें छिपनेके लिए भागे जा रहे हैं । उन्हें संवीधन करके एक भक्त कहता है :—

चौरसारभपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया ।

मानसे मम नितान्ततामसे नन्दनन्दन कथं न लोयसे ॥३॥

३ भाषार्थः—हे नन्दनन्दन ! मक्खन चुराकर डर के मारे यदि आप कहीं भाग रहे हैं और किसी अन्धेरे स्थानमें छिपना चाहते हैं, तो मेरे उस मनमें आकर क्यों नहीं छिप जाते जिस में मोह और अज्ञानरूपी अन्धकार भरा हुआ है । चेसा अन्धकारमय स्थान आपको छिपनेके लिए और कहां मिलेगा ?

एक विष्णु का अनन्य भक्त विष्णु को संवीधन करके कहता है :—

राजाकरुण्य गच्छं गच्छिषी न पद्मा,

किं दिवर्त्तति भवति जगदीश्वराय ।

राधागच्छीतमनसः मनषीऽस्ति दैव्यं,

तस्मै गच्छाण्य पदपंकजमर्पितं तै ॥ ४ ॥

४ भाषार्थः—समुद्र, जिसमें रत्न भरे हुए हैं, आपका नियास-स्थान है । मातात् लक्ष्मी आपकी पत्नी हैं, और आप स्वयं तोनों दोनोंके स्वामी हैं, भन्ना मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? पर हाँ, एक चीज़ आप के पात नहीं है और उसे मैं आपको

क्या हम गज से भी और गोवर्द्धन पर्वत से भी भारी हैं कि हमारा अब भी आप उद्धार नहीं करते ?

एक भक्त महादेव को संबोधन करके कहता है:—

पृष्ठं भवन्तमयमुद्वहते कदाचिदिता-

वता यदि तवैति दयास्पदत्वम् ।

स्वामिब्रह्मं तु हृदयेऽन्वहमुद्वहामि त्वा

मित्यतःकथमहो न तवानुकम्प्यः ॥७॥

७ भावार्थ:—भगवन् ! यह नान्दी पैल आपको कभी कभी अपनी पीठ पर सवार कराकर इधर उधर ले जाता है, इतनेहीसे यह आपकी परम कृपा का पात्र घना हुआ है। नाथ ! हम तो प्रतिदिन और प्रतिक्षण आपको अपने हृदयमें लिये फिरते हैं, पर आप हमें अपनी कृपा का पात्र क्यों नहीं बनाते ?

कोई बहुत ही कामी विष्णु की भक्ति किया चाहता है पर मन उसका विष्णुके चरणोंमें नहीं रमता, तब विष्णु का भक्त कामदेव को संबोधन करके कहता है:—

मदन ! परिहर श्रितिं मदीये मनसि मुकुन्दपदारविन्दधाम्नि ।

चरनयनरुग्मानुना कृगोऽसि स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ॥ ८॥

८ भावार्थ:—कामदेव ! तुम अब मेरे मन से हट जाओ, उसमें अब विष्णु भगवान के चरणारविन्दों का पास होने लगा है। तुम तो पहिले ही से महादेव के तीसरे नेत्र की अग्निसे दग्ध होकर दुर्बल हो रहे हो, अभी तुम्हें विष्णु भगवानके चक्र की शक्ति नहीं है।

एक भक्त मुक्त हो जाने पर, महादेवको संबोधन करके कहता है:—

वयम् प्रादुर्भावाद्नुमितमिदं जन्मनि पुरा

पुरारि ! न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रयत्नवान् ।

नमन् मुक्तं संप्रत्यहमतनुरयेऽप्यनतिभारम्

महेश ! चन्तव्यं तदिदमपराधमपि ॥८॥

६ भावार्थः—हे महेश ! इस जन्ममें शरीर धारण करनेसे मैं अनुमान करता हूँ कि मैंने पूर्वजन्ममें आपको कभी भी प्रणाम नहीं किया। यदि मैंने पहले जन्ममें आपको प्रणाम किया होता तो मेरा यह जन्म कभी न होता और न मैं फिर शरीरधारण करता। इस जन्म में मैं आपको अब प्रणाम करता हूँ, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँगा और मुझे पुनः शरीरधारण न करना पड़ेगा। अतएव मैं आपको भविष्यमें भी प्रणाम न करूँगा ? क्योंकि बिना शरीर के मैं आपको प्रणाम कैसे कर सकूँगा। इसलिये हे भगवन् ! मेरे इन दोनों, पूर्वकालके और उत्तरकालके अपराधों को क्षमा कीजिए।

संयोग और वियोग ।

—:०:—

प्रियतम के वियोग में कोई स्त्री अश्रुधारा बहाकर अपने स्तनों को भिगो रही है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है:—

भंगानि मे दहतु कान्तवियोगवद्भिः

संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदि वतंते यः ।

श्यामया शशिमुखी गलदश्रुवारि-

धाराभिरुष्णमभिषिञ्चति हृत्प्रदेशम् ॥९॥

१० भावार्थः—विरह की आग मेरे सारे शरीर को चाहे भस्म कर दे, किन्तु मेरे हृदय में सदा निवास करने वाले मेरे प्रियतम को इस आग की आंच भी न लगाने पावे । बस, इस आशय से वह चन्द्रमुखी लगातार अश्रुधारा बहाकर अपने वियोगतप्त हृदयस्थान को सींच रही है । उसकी अश्रुधारा आँखोंसे बहकर छाती पर लगातार गिर रही है । देखिए, इतनी सी बात को कविने कैसे अच्छे ढंगसे कहा है ।

गोवर्धन सप्तशतीका यह श्लोक सच्चे प्रेमके विषयमें हैः—

अन्यमुखं दुर्वाहो य प्रियवदने च एव परिहासः ।

इतरेन्वनजन्मा यो धूमं सोऽगुग्भवो धूपः ॥११॥

११ भावार्थः—जो बात दूसरे के मुखसे कही गई है वह गाली गिनी जाती है, पर, वही बात अपने प्रियतमके मुखसे कही जाय तो केवल हँसी मज़ाक समझी जाती है । सच है, सामान्य काष्ठके जलनेसे निकला हुआ जो धूआं “धूम” के नामसे पुकारा जाता है, वही यदि अगुद, के जलनेसे निकले तो “धूप” कहलाता है । प्रेम की विचित्र गति है !

प्रियतमके परदेश जानेके समय पत्नी रोने लगी । इस पर पति कहता हैः—

अग्निरायाश्चसमये कुह मंगलानि

किं रोदियि प्रियतमे ? यद् कारणं मे ।

३ प्राणनाथ ! विरहानसतोव्रताप-

धूमेन वारि गलितं मम सोपनाभ्याम् ॥१२॥

१२ भावार्थः—प्रियतमे ! मेरे प्रस्थान करनेके समय तुम्हें

मंगलाचार करना चाहिए, सो न करके तुम रो रही हो । इस का कारण तो मुझे पतलाभो । इस पर वह उत्तर देती है,—
हे प्राणनाथ ! तुम्हारे वियोगरूपी अग्नि से उठा हुआ धूआं मेरी आँखों में लगा, उसी से मेरी आँखों से आंसू टपकने लगे । और कोई कारण नहीं है ।

किसी के चन्द्रमा को भी शर्मने वाले मुख तथा कमल के समान चरणों को तारोफ में कवि कहता है :—

उर्ध्वं धं यो भव न मदते जातिवैरो निभाया-

मिन्दोरिन्दौघरदलदृशा तस्य सौन्दर्यदर्पे ।

गीतः शान्ति प्रसन्नमनसा वस्तुकात्स्न्येति चर्चा-

द्वयता मन्ये ललिततनु । स पादयोः पद्मलज्जोः ॥१३॥

१३ भावार्थः—“मेरा स्वभाविक बैरी चन्द्रमा रातमें मेरे धि-
काश और अभ्युदयको नहीं सह सकता । उसी चन्द्रमाके सौन्दर्य
दर्प को इस कमलनयनी ने अपने मुख की कान्ति से खूर कर
दिया” । वस इसी क्षुशीमें अपनी हलहता प्रकाश करनेके लिए हे
कोमलोगो ! कमल की शोभा तुम्हारे पैरों में भाकर लग गई ।

यदि स्वयं कोई अपने बैरी से न जीत सके और
दूसरा कोई उस बैरी को हरा दे तो वह बहुत ही खुश होता
है और हारनेवालेके चरणों पर अपने सिर को रख कर
अपनी हलहता प्रकाश करता है । इसी तरह कमलने उस
स्त्रीके मुखसे चन्द्रमा को पराजित देखकर अपनी हलहता
प्रकाश करनेके लिए अपनी कान्ति उसके चरणों को समर्पित
कर दी । उसके मुख और चरण चन्द्रमा और कमल से भी

सुन्दर हैं, सिर्फ इस बात को कविने कितनी खूबी के साथ वर्णन किया है ।

कोई प्रेमी अपनी प्रियतमा का कुशलमंगल एक दूतीसे पूछ रहा है । वह दूती अभी अभी उसकी प्यारी का संदेश ले कर आई है । इस श्लोक में इन्हीं दोनों की बातचीत है । श्लोक बहुत ही भाव पूर्ण और चुभता हुआ है :—

कुशलं तस्या ? जीवति, तत्कुशलं पृच्छामि, जीवतीत्युक्तम् ।

पुनरपि तदेव कथयसि, गता न कथयामि वा खसिति ? ॥१४॥

१४ भावार्थः—उसकी कुशल तो है ? हाँ जीती है ! अरे हम उसकी कुशल पूछते हैं ? कह तो दिया जीती है ! फिर फिर उसी बात को कहती जाती हो ? तो क्या मैं कह दूँ कि वह मर गई जब कि उसमें सांस बाकी है ?

“किसी तरहसे आपके वियोगमें जी रही हैं” इस इतनी बात को कविने कैसे अच्छे ढंगसे कहा है !

घने अन्धकार में अपने चारोंके पास जाती हुई किसी अभिसारिका नायिकासे कोई प्रश्नोत्तर करता है :—

क प्रस्थितासि करभीष ! घने निगोषे ?

प्राण्याधिको वसति यत्र जन प्रियो मे ।

एकाकिनौ वद कथं न विभेदि बाले ?

नन्वलिपुङ्गितशरो भद्रं सदाय ॥ १५ ॥

१५ भावार्थः—सुन्दरि ! ऐसे घने अन्धकार में कहाँ जा रही हो ? जहाँ मेरा प्राणसे भी प्यारा प्रियतम रहता है वहीं जा रही

हैं। घाले ! अकेली जाते हुए तुम्हें डर नहीं लगता ? अकेली कहाँ हैं, धनुषबाण लिए कामदेव जो मेरे साथ साथ जा रहा है। -

निम्न लिखित श्लोक के सवन्ध में मयूर और बाण के विषय में एक कथानक प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि बाण मयूर कविके बहनोई और बड़े मित्र थे। किसी दिन मयूर कवि रातके पिछले पहर जाग उठे और उन्होंने कई श्लोक बना डाले। उन्हें बहुत रसीले और मनोहर समझ मारे उत्सुकताके वे अपने मित्र बाण कवि को सुनानेके लिए उनके गृह-द्वार पर पहुँचे। बाण कवि ठीक उसी समय अपनी प्यारी पत्नी, मयूर कवि की बहिन को, जो मान कर बैठी थी, प्रसन्न करते हुए, यह श्लोक रच कर सुना रहे थे। तीन चरण सुना कर जबतक वे चतुर्य चरणके शब्द सोच रहे थे तबतक मयूर कवि वहाँ जा पहुँचे और स्वयं चतुर्य चरण की पूर्ति करते हुए बोले:—“स्तनप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्”। यह सुनतेही बाण कवि प्रसन्नता से भरे बाहर निकल आये और मयूरसे मँड की। बाण की स्त्री ने अपनी क्रीड़ा में ऐसा रंगमंग देख, भाईको शाप दिया कि वह कोढ़ी हो जाय। मयूर कोढ़ी हो गये और सूर्यशतक बनाने पर उस रोगसे छुटकारा पाया। सूर्यशतक रचकर मयूरने अपना कोढ़ दूर किया ऐसा काव्य प्रकाशमें भी लिखा मिलता है।

गतभावा रात्रि, तप्ततनु प्रसी प्रीयंत इव,
प्रदीपोऽयं, निद्रावममुपगतो पूर्णत इव ।
प्रणामान्त, कोपस्तदपि न अदासि कुषामहो,
स्तनप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥ १६ ॥

१६ भावार्थ :—रात अब बीत सी गई है । चन्द्रमा भी अब प्रकाशहीन होकर अस्त होनेको है । यह दीपक भी जो रात भर जाला है, अब नीन्दमें आकर आँधार्ड ले रहा है । पत्तिके प्रणाम करनेसे क्रोध अन्त हो जाना चाहिये, पर हमारे प्रणाम करने पर भी क्रोध नहीं छोड़ती हो । मालूम होता है कठोर स्तनोंके पास रहते रहते तुम्हारा हृदय भी कठोर हो गया है ।

एक दूती किसी विरहविधुरा स्त्री की मरणासन्न दशा का वर्णन उसके प्रेमपात्र से करती हुई कहती है:—

तव विरहविधुरबाला सद्यः प्राणान् विमुक्तवती ।

हृलभमौदयमंगं मत्वा न ते पुनस्तामजदुः ॥ १७ ॥

१७ भावार्थ:—तुम्हारे विरहमें व्याकुल होकर उस बालाने तुरन्त ही अपने प्राणों को छोड़ दिया । किन्तु प्राणोंने यह सोचा कि ऐसे कोमल अंग रहने को कहा मिलेंगे इसलिए उन्होंने उसे न छोड़ा । “यह किसी तरह अब तक जीवित है और विरह के दिनों को काट रही है” इस इतनी सी बातको किसी लूयीके साथ फयिने कहा है ।

एक दूती किसी स्त्री की विरहावस्थामें भी सुन्दरताका वर्णन करती हुई उसके धूर्त प्रियतम से कहती है:—

तथास्तपदकमनसः स्मरवाण्यवैः

काश्यं वपुः शठ विमर्त्ति यथा यथैव ।

शोकयिताश्रयतयेवतथा तथैव ।

कान्तिर्धनौ भवति दीर्घं विस्मोचनायाः ॥ १८ ॥

१८ भावार्थ — हे शठ ! तुम्हारी चिन्तामें सूखी जाती हुई उस मृगनयनी का शरीर कामदेव की वाणवपां से ज्यों ज्यों दुबला होता जाता है त्यों त्यों उसके शरीर की कान्ति और भी घनी होती जाती है । क्योंकि पहले शरीर दृष्टपुष्ट होने से उसका सौन्दर्य अधिक स्थान में फैला हुआ था, अब शरीर के दुर्बल होजाने से वही सौन्दर्य सकुचित होते होते और भी घना हो गया है ।

किसी प्रगल्भानायिका का वर्णन इस श्लोक में अच्छा दिया गया है । स्त्रीके पादप्रहार करने पर पति कहता है —

दासि कृतागसि भवत्युचितं प्रभूणा
यादयन्हार इति सुन्दरि ! नास्मि दूयि ।
उद्यत्कठोरपुलकाकुरकष्टकाग्रै
येन्निघते नृदु मदे ननु सा व्यथा मे ॥ १८ ॥

१९ भावार्थ :— मैं आपका दास और अपराधी हूँ और आप मेरे प्रभु हैं । प्रभुओं का, अपराधी सेवक को लात मारना उचित ही है । अतएव हे सुन्दरि ! आपके प्रहारसे मुझे दुःख इस बात का है कि आपके सुकुमार पैर मेरे शरीर में उठे हुए कठोर पुलकरूपी काष्ठों से बिँध गये होंगे, जिससे आपको बहुत पीडा हुई होगी ।

संस्कृत भाषा में “मन” शब्द नपुंसकलिंग है, इस पर किसी कवि की सूझ है —

नपुंसकमिति चाट्वा प्रियायै प्रेषित मन ।

तच्च तत्रैव रमते क्षता पाणिनिना वधम् ॥ १० ॥

२० भावार्थः—मैंने यह समझकर कि “मेने” नपुंसक है उसे अपनी प्रिया के पास दूत बनाकर भेजा । किन्तु वह तो वहीं रम गया, आने का मन भी नहीं करता । सचमुच पाणिनिने बड़ा धोखा दिया । न पाणिनि उसे नपुंसकलिंग लिखते न हम उसे वहां भेजते ।

एक विरहिणी स्त्री ईश्वरसे प्रार्थना करती हुई कहती हैः—

पंचतत्त्वं तत्पुरेतु, भूतनिवन्धाः स्व' स्व' विप्रत्त्वौष्ठितं,
याचे त्वां द्रुहिष्य ! प्रणम्य शिरसा भूयोऽपि भूयान्मम ।
तद्वापौषु प्रयच्छदोयसुकुरे ज्योतिस्सदोयालय-
व्योमि व्योम, तदोयवर्त्मनि धरा, तत्तालवन्तऽनिलः ॥१॥

२१ भावार्थः—मेरा शरीर पंचतत्त्व को प्राप्त हो, तथा मेरे शरीर के पृथिवी आदि पांचों तत्त्व यथाक्रम अपने अपने तत्त्व में मिल जाय, कोई डर नहीं ! किन्तु परमेश्वर से यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि पांचों तत्त्व इस क्रम से मिलें कि मेरे शरीरका जलतत्त्व उस सरोवरमें मिल जाय जिसमें मेरा प्रियतम स्नान करता है, तेजस्तत्त्व उस दर्पण में मिल जाय जिसमें वह अपना मुख देखाता है, आकाशतत्त्व उस गृहाकाश में मिल जाय जो उसका निवासस्थान है, पार्थिवतत्त्व उस मार्गमें मिल जाय जिसपर वह चला करता है, वायुतत्त्व उस पंखे में मिल जाय जिससे वह हवा लेता है । इसी भावका एक हिन्दी दोहा भी हैः—

हर न मरन, विधि विनय यह, भूत मिलें निजवास ।
प्रियहित पापी, मुकुर, मग, धोजन, आंगन अकाश ॥

इस श्लोक में किसी कविने नायक-नायिका के परस्पर-प्रेम-दर्शन का अच्छा चर्चन किया है । दोनों अपनी अपनी अट्टालिका पर खड़े हुए एक दूसरे को देख रहे हैं, इसपर कवि कहता है:—

परस्परालोकनरञ्जुरेया दृष्टान्तरादृष्टमुवि प्रवडा ।

गतागतं निभयमव यूनोर्नटौ विषत्तो मनसौ नितान्तम् ॥२१॥

२२ भावार्थ:—एक दूसरेका परस्परदर्शन जो है वही एक डोरी है, जो एक अट्टाली से दूसरी अट्टाली तक बन्धी हुई है । उस पर दोनों चुपक और चुपकीके मन रूपी नट निश्चाङ्क होकर आ जा रहे हैं ।

पतिने परदेश जाने का निश्चय किया है, सिर्फ इस समाचार से ही पत्नी की जो दशा हुई वह इस श्लोक में दिखलाई गई है । श्लोक बहुत ही भावपूर्ण तथा हृदयग्राही है:—

प्रस्थानं वलवैः कृतं, प्रियसखैरसौ रजसं नतं

पृथ्वा न चक्षमासितं, व्यवसितं चित्ते न गन्तुं पुरः ।

यातुं निश्चिन्तितसि प्रियतमे सर्वे स्मरं प्रस्थिताः

गन्तव्ये सति जीवित ! प्रियतुङ्गसायः किमुव्यज्यते ॥२२॥

२३ भावार्थ:—यह सुनतेही कि उसके प्राणनाथ ने जाने का निश्चय कर लिया है, वह इतनी दुखली होगई कि कड़े हाथों से चले गये, बाँसू लगातार आँखोंसे जारी हो गये, धीरे एक क्षण भर के लिए मौ न ठहरा, और चित्त तो आगे ही जाने के लिए तैयार होगया । 'खबर सुनते ही सबके सब एक साथ मुझे छोड़कर प्यारे का साथ देने को भागे । तो हे प्राण !

तुम्हें भी तो एक रोज़ जानाही है, तुम भी प्रियतम का साथ देने के लिए क्यों नहीं चले जाते ।

पति पत्नीमें कलह हुई, पत्नी रूठ गई । पति के मनाने पर दोनों में जो प्रश्नोत्तर हुए वही इस श्लोक में हैं ।

बाले ! नाथ ! विमुञ्च मानिनि ! क्वं रोषान्मया किं कृतं ।

खेदोऽस्मात् न मेऽपराध्यति भवान्धर्वोऽपराधा मयि ।

तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा ? कस्याग्रतो वदते ?

नखे तन्मम, का तवाधि ? दयिता, नास्मोत्यती वदते ॥१४॥

१४ भावार्थः—(पति सम्बोधन करता है) प्रिये ! (पत्नी) क्या प्राणनाथ ? (पति) हे मानिनि ! क्रोध को छोड़ दे । (पत्नी) मैं क्रोध कर के करही क्या सकती हूँ ? (पति) हमारे ऊपर रोद । (पत्नी) भला मैं रोद क्यों करने लगी । क्या आपने कोई अपराध किया है, अपराध तो सब मैंने ही किये हैं, (पति) तो फिर क्यों गद्गद कण्ठसे रो रही हो ? (पत्नी) किस के आगे रो रही हूँ ? (पति) मेरे आगे रो तो रही हो, (पत्नी) भला, मैं आपको क्या हूँ जो आपके सामने रोऊँ ? (पति) तुम मेरी प्रियतमा हो, (पत्नी) प्रियतमा नहीं हूँ इसीसे तो रो रही हूँ !

एक दृती किसी विरहविधुरा बाला की दशा का वर्णन उस के प्रियतम से करती हुई, कहती है—

महिलासहस्रमदिते तव हृदये सुमग मा चमान्ती ।

अनुदिनमनन्यकर्मा चङ्गं तनुमपि तनूकरोति ॥ १५ ॥

१५ भावार्थः—हे सुमग ! तुम्हारे उस हृदय में प्रवेश पाने के

लिप, जिसमें हजारों खियां भरी हुई हैं, अतएव जिसमें विल-कुल स्थान नहीं है, वह अमागी अपने शरीर को, जो आपही बहुत कोमल और दुर्बल है, दिन प्रतिदिन और भी दुर्बल बना रही है कि कदाचित् अब प्रवेश कर सके । आजकल उसे केवल यही एक काम रह गया है ।

वह आपके वियोगमें बहुत ही दुर्बल हो गई है इस इतनी बात को कधिने किस लूची के साथ कहा है । यह श्लोक प्राकृत भाषा की गायत्री सप्तशती के एक श्लोक से उल्था किया गया है । जो यों हैं,—महिलासदस्सभरिण सुहृद्विषय सुहृद्व ! सा अमावन्ती । अणु दिणमण रण कम्मा अर्ग तणु अं चि तणुप्पइ ।

पति के परदेश जाने के समय पत्नी कहती है :—

“मा यादौ” त्यपमञ्जल, “व्रज” किल संचिन शून्यं वष ।

“क्षिउंति” प्रभुता, “यथाकचि कुरुष्व” प्राप्युदासीनता ।

“नो जीवामि विना त्वये”ति वचन संभाव्यते वा न वा

तन्माभिधय नाथ ! यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते ॥२६॥

२६ भाग्यार्थः—“आप मत जाय” यदि यह कहें तो अमंगल समझा जायगा, “आप जाय” कहें तो यह स्नेह शून्य बात समझी जायगी, “ठहरे” यदि यह कहें तो प्रभुता समझी जायगी, “जैसे आप चाहें वैसे करें” इससे रूखापन शलकता है, “आपके बिना मैं नहीं जी सकती” यह बात कदाचित् आप विश्वास न करें, तो हे नाथ ! मुझे बतलाइय कि आपके प्रस्थान

के समय में क्या फहं ? भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रने इसका अनुवाद हिन्दीमें बहुत अच्छा किया है, यथा—

रोकहिं ओ तो अमंगल होय,
ओ प्रेम नसै ओ कहौ “प्रिय जाइये” ।
ओ कहौ “जाइुनह” तो समता,
ओ कछू न कहौ तो सनेह नसाइये ॥
ओ कहौ “जोहौं न आप बिना,”
तो कहौ हरिचन्दनू क्यों पतिआइये ।
तासों ध्यान समै तुम्हरे दम का कहैं आपै हमै समुझाइये ॥

एक बहुत ही भोलीभाली नवययस्का मुग्धा नायिका है । वह बेचारी जानती भी नहीं कि मान कैसे करना होता है । और उसका धूर्स पति उसके भोलपनका अनुचित लाभ उठाकर मनमानी किया करता है । इस पर उसकी एक प्रौढ़ा सखी उसे आन वान के साथ रहने की सलाह देती हुई कहती है:—

मुग्धे ! मुग्धतयेव नेतुमखिलः कासः किमारभ्यते ?
मानं धत्स्व ! इति वधान ! ऋतुतां दूरे कुरु प्रेषसि ।
सख्यैव प्रतिबोधिता प्रतिवषट्पामास भौतानना
नीचैः शंस ! इदि स्थितौ हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रीयति ॥२७॥

२७ भावार्थ:—ये भोलीभाली ! क्या अपनी सारी जवानी तू इसी तरह अल्हड़पन में बिताना चाहती है ? ज़रा अभिमान किया कर ! धैर्य के साथ रहना सीख ! अपने प्रियतम के साथ सीधे व्यवहार को छोड़ दे । अपनी सखी से इस तरह ममझाई गई, उस मुग्धा ने बहुत डर कर जवाब दिया

“अरे धीरे से बोल ! मेरे हृदय में बैठा हुआ मेरा प्राणनाथ कहीं सुन न ले” । भोलेपनका अन्त है ! इसी भावको लेकर विहारीने यह दोहा लिखा है :—

सप्री सिखावति मानविधि सैनन वरजति बाल ।

हरष कहू मो हिय बसत सदा विहारी लाल ॥

किसी स्त्री का पति या प्रेमी रोज़ रोज़ कहा करता था कि “मैं जाता हूँ”, “मैं जाता हूँ” इस पर एक दिन वह कहती है :—

यदि यास्यसि नाथ ! निश्चितं यामि यामि वचनं हि मा यद् ।

अशनेः पतनं न घेदनं पतनज्ञानमतीव दुःसहम् ॥ २८ ॥

२८ भाषार्थः—हे नाथ, यदि तुमने जाना निश्चय ही कर लिया है तो यह क्यों बारबार कहते हो कि “मैं जाता हूँ”, “मैं जाता हूँ” । जाना हो तो चले जाइये, कृपा करके यह वचन बार बार मत कहिए । क्योंकि बिजलीका गिरना दुःखदायक नहीं होता, किन्तु यह बहुत ही दुःखदायक होता है यदि मालूम हो जाय कि अर बिजली गिरनेवाली है । इसी तरहसे आपका चले जाना इतना कष्टदायक न होगा, क्योंकि आपके जाते ही मेरे प्राण इस शरीरसे तुरन्त निकल जायेंगे, किन्तु आपका बारबार मुझे बतलाना कि “मैं जाता हूँ” “अब बिजली गिरने वाली है” इस ज्ञान के समान है ।

परदेश जाने के समय कोई मनुष्य अपनी पत्नी की दशा अपने मित्रसे कह रहा है :—

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि ! पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते,

नो कार्या नितरां कृश्यासि कथयत्येवं सवाप्ये मयि ।

लज्जा मन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा
दृष्ट्वा मां, हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः ॥ २६ ॥

२६ भावार्थ—:“हे सुन्दरि ! क्या, जो बिछुड़ते हैं वे फिर नहीं मिलते, तो फिर मेरे लिए इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो ? तुम इतनी दुखली क्यों हो रही हो ?” इस तरहसे मेरे आंसू बहाकर कहते ही उसने आंसुओं को छिपा कर, लज्जासे शिथिल नेत्रोंसे मेरी ओर देखा और हंस कर अपने भविष्य मरने के उत्साह को प्रगट किया । पति के उत्साह दिलानेसे उसने हंस तो दिया किन्तु उस हंसीसे उसका मरने में उत्साह टपक रहा था । अर्थात् पति के जाते ही उसके प्राणोंका का भी जाना निश्चित था ।

पति परदेश जा रहा है, उस समय पति और पत्नी में जो घातें हुई हैं वही इस श्लोक में हैं । इस श्लोक का भाव बहुत ही उच्च तथा हृदय में चुभने वाला है: ---

यामः सुन्दरि !, याहि पान्थ !, दयिते ! शोकं वृथा मा कृथाः,
शोकस्ते गमने कुतो मम ? ततो घाप्यं कथं मुंचसि ? ।
शीघ्रं न व्रजसीति मां गमयितुं कस्मादियं ते त्वया,
भूयानम्य सह त्वया जिगिमिषोर्जीवस्य मे संभ्रमः ॥ ३० ॥

३० भावार्थ:—(पति) प्रिये ! हम जाते हैं (पत्नी) अच्छा पथिक, जाओ । (पति) वृथा शोक मत करो । (पत्नी) भला तुम्हारे जाने पर मुझे शोक क्यों होने लगा ? (पति) तो आंसू क्यों बहा रही हो ? (पत्नी) इसलिये कि तुम जल्दी नहीं चले जाते । (पति) प्रिये ! तुम्हें क्यों इतनी जल्दी पड़ी है कि हम

चले जायँ । (पत्नी) मुझे जल्दी नहीं पड़ी है, मेरे प्राणों को जल्दी पड़ी है कि किसी तरह से तुम घरके बाहर निकलो तो वे भी तुम्हारा साथ देने के लिए मेरे शरीर से निकलें !

पतिके पत्नी से बिदा लेते समय उस स्त्री की जो दशा हुई उसी को कवि पड़ी सूची के साथ इस श्लोक में वर्णन करता है—

यामोति प्रियपृष्ठायाः प्रियायाः कण्ठवर्त्मनि ।

घबोजोवितयोरासीद्वहिर्निःसरणे रणः ॥ ३१ ॥

३१ भावार्थः—पति ने परदेश जाते समय, पत्नी से बिदा मागते हुए कहा,—प्रिये ! मैं अब जाता हूँ । इसपर उस स्त्री का गला दब गया और वह बेचारी कुछ बोल न सकी । उसने सुप रहने का असली कारण यह था कि उसके प्राणों और वचनों में युद्ध होने लगा । घबन कहते थे कि हम पहले कण्ठ से निकलें और प्राण कहते थे कि हम पहले निकलें । यद्यपि इसी क्षण में वह बेचारी कुछ न बोल सकी ।

इसी भावका यह दोहा भी है :—

आज सखी हों सुनति हों पौ फाटत पिय गीन ।

पौ हिय छोड हें पहिले फाटत कौन ॥

पति विदेश जानेको तैयार है उस समय पत्नीकी क्या दशा है, इसे कवि इस भावपूर्ण श्लोकमें कहता है !

याचो मांगलिकी प्रयाणसमये जल्पन्यनलये जने

केलीमन्दिरमास्तायनमुषे प्रिन्यस्तपकामनुजा ।

-निःश्वासग्लपिताधरा परिपतद्वाष्पाद्र्वक्षोरहा
वाला लोलविलोचना शिव ! शिव ! प्राणेशमालोकेते ॥३२॥

३२ भावार्थः—प्राणेश्वरके जानेके समय, जबकि सब कुटुम्बके लोग मंगल पाठ कर रहे हैं, उस समय वह वाला, जिसके अधरपुट दुःखकी सांस लेनेसे मुखड़ा गये हैं, और दोनों स्तन आंसुओंसे लगातार भीग रहे हैं, क्रीड़ामन्दिरके सरोखमें अपने मुख कमलफों रखकर चंचल नेत्रोंसे केवल जाते हुए प्राणनाथको देख रही है। पतिके परदेश जाते समय किसी परदेवाली नयनयस्का स्त्री का हार्दिक भाव इस श्लोक में कवि ने अच्छा दिखलाया है। बेचारी लज्जा के मारे पति से जाते समय पुल के वातचीत भी नहीं कर सकती ।

एक चिरहिणी अपनी सपनी के द्वारा पति के पास भेजने के लिये मन्देसा कह रही है :—

पाच्यं तस्मै सहचरि ! भयदुभूरिविश्लेषवह्नी
स्नेहंरिद्धे मम वपुरिदं काम होता जुहोति ।
प्राणानस्मै तदहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे
तत्रादेशो भवतु भवतां, यस्मैपामधोशः ॥ ॥ ३३ ॥

३३ भावार्थः—हे सचि ! उन से जाकर पहना कि कामदेव रूपी होता (यश करानेवाला पुरोहित) मेरे शरीर को स्नेह रूपी घृत से प्रशस्त्रित किये गये तुम्हारी वियोगरूपी, अग्नि में दहन कर रहा है । भय उम पुरोहित को मैं प्राणरूपी दक्षिणा देना चाहता हूँ, किन्तु उम में धाग भी जाना भी आवश्यकता है, क्योंकि उन प्राणों के मालिक तो धाग ही हैं । यदि धाग की

आशा हो तो मैं इन प्राणों को त्याग कर वियोगतप्त जीवन से छुटकारा पा जाऊँ ।

एक कोमलांगी स्त्री विरहज्वर से पीड़ित है। उस की सखिया कमलदल से उसे हवा कर रहीं हैं। इसपर वह उन से कहती है:—

विरमत ! विरमत ! सख्यो ! नलिनीदलतालवृन्तपद्मेन ।

हृदयगतोर्यं चक्षिर्श्रुति कदाचिज्ज्वलत्येव ॥ ३४ ॥

३४ भावार्थ:—सखियों ! कमलदल के पंखे से मुझे हवा मत करो ! मत करो ! मेरे हृदय में विरह की आग जो धीरे धीरे सुलग रही है, यह कहीं एकदम से मभर न उठे !

एक धूर्तपति अपनी पत्नी से रोज कहा करता था “हम दोनों तो एकमन दो तन हैं” । एक दिन अन्य स्त्री से संयोग कर जब वह घर लौटा तो उस के शरीर में रतिचिन्हों को देख-कर ताने के साथ उस की पत्नी कहती है:—

सत्यमेव गदितं त्वया विभो !

“जीव एक” इति यत् पुरावयोः ।

अन्यदारनिहिताः नखग्रणा

स्तावके वपुषि पीडयन्ति माम् ॥ ३५ ॥

३५ भावार्थ —स्वामिन् ! आप पहले जो कहा करते थे कि “हम दोनों के प्राण एक हैं” यह आज सच्चा साबित हुआ । यदि हम दोनों के प्राण एक न होते तो आप के शरीर में पड़े हुए अन्य स्त्री के नखचिह्न मुझे क्यों पीडा देते ।

वसन्त ऋतु में एक मृतक पथिक रास्ते पर एक आम के पेड़ के पास पड़ा हुआ मिला । इस पर एक कवि कहता है:—

सध्याधेः कृशाता, क्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालास्रुतिः
किञ्चिन्नैतदिहास्ति, तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः ।
आः ! हातं मधुलंपट्टैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नून ! साहसिकेन चूत मुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥ ३६ ॥

३६ भावार्थ :—यदि यह किसी बीमारी से मरा होता तो कम से कम दुबला तो होता; यदि कोई घाय होता तो रक्त बहता, यदि साँप काटे होता तो मुँह से फिचकुर बहता होता । ये सब तो कुछ नहीं हैं, फिर यह बेचारा पथिक मरा कैसे ! अच्छा ! समझे, मधुके लालची भीरों की झनकार से खिंचकर इसने, अवश्य, साहस करके, आम की मंजरी पर एक दृष्टि डाल दी होगी ।

कोई फामी पुरुष अपनी प्रियतमा के यक्षःस्वल पर लटकते हुए मोतियों के हार को संयोजन करके कहता है :—

मूर्चीमुखेन सरदेव पूतप्रणस्थ
मुक्ताकलाप ! लुठसि स्तनयोः प्रियायाः ।
याजैः स्मरस्य शतशो विनिवृत्तमर्मा
स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि ॥ ३७ ॥

३७ भावार्थ—ये मुक्ताहार ! तुम सिर्फ एक बार सुई से छेदे गये हो और उम्मी से मेरी प्रिया के स्तनों पर खेज़ पड़े रहते हो और उम्र भर लुटन करते हो । अरे ! हम तो खेज़ फामदेव के याजों से सैफड़ों बार मर्मणानों में छेदे जाते हैं, परन्तु हमें तो स्वप्न में भी यह नहीं दिखलाई पड़नी ! स्तनों पर लुटन करना तो दूर रहा !

विदेश जाते हुए पति और पत्नी में जो बात चीत हुई
वही इस श्लोक में किसी कवि ने वर्णन किया है :—

स्मर्तव्या चयमिन्दुसुन्दरमुखि ! प्रस्तावतोऽपि त्वया
सत्यं नाथ ! यदि प्रदास्यति विधिर्जातिस्मरत्वं मम ।
एकस्मिन्नपि जन्मनि प्रियतमे ! जातिस्मरत्वं कथं
प्राणाः पान्थ ! समं त्वयैव चलिताः काद्यापि जन्मैकता ॥३८॥

३८ भावार्थ—(पति) “चन्द्रमुखि ! मुझे भी कभी कभी स्मरण
करते रहना” । (पत्नी) “नाथ ! अद्यक्ष्य स्मरण करूंगी यदि
मुझे जन्मान्तर की बात याद रहेगी ।” (पति) प्रियतमे ! यह
तुम क्या कहती हो ?, इस एक ही जन्म में जन्मान्तर की बात
कैसी ? (पत्नी) हे पथिक ! प्राण तो तुम्हारे साथ ही जा रहे
हैं, अब वही जन्म और वही शरीर कैसा ।”

एक स्त्री अपने प्रियतम को लिखती है :—

स्मर्तव्याऽहं त्वया काले न स्मरिष्याम्यहं तव ।
स्मरणं चेतसो धर्मं तद्येतो भवता हृतम् ॥ ३९ ॥

३९ भावार्थ :—कभी कभी हृषा करके आप मुझे स्मरण कर
लिया करें । मैं तो आपका स्मरण कर नहीं सकती । क्योंकि
स्मरण करना चित्तका धर्म है, उस चित्त को आप छुरा ले गये
हैं । अतएव मैं आपको कैसे स्मरण कर सकती हूँ ।

अमरुशतक में एक श्लोक है जो अमरुश्लेष का बहुत अच्छा
उदाहरण है । इसमें कविने “मुक्तानां” इस शब्द पर काम किया
है । मुक्त माने “मोती” और “मोक्षपद प्राप्त” दोनों हैं :—

हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले ।

मुक्तानामप्यवस्येयं के वयं स्मरकिङ्कराः ॥ ४० ॥

४० भावार्थ :—भोतियों की यह 'माला मृगनयनियों के स्तन-मण्डल पर लुण्ठन कर रही है । जब मुखों की (जो मोक्षपद प्राप्त हो चुके हैं उनकी) यह दशा है, तो हमारा क्या कहना जो कामदेव के दास हो रहे हैं ।

सखीके धार धार कहने पर कि तू क्यों ज़ोर ज़ोरसे रोती है
विरह विधुरा स्त्री उत्तर देती है :—

अनुदिन मतितीव्रं रोदिपीतित्व मुञ्चैः
सखि ! किल कुसुमे त्वं चाच्यतां मे मुग्धैव ।
हृदयमिदमनंगांगारसंगाद्विलीय
प्रसरति यहिरंभः सुस्थिते ! नैतदधु ॥ ४१ ॥

४१ भावार्थ :—“तू रोज़ रोज़ बहुत रोती रहती है” ऐसा कह पार है सखी तुम मुझे क्यों व्यर्थको यदनाम किया करती हो । कामाग्निसे पिघल पिघल कर यह हृदय पानी होकर बाहर निकल रहा है ! हे विरह पीड़ासे अनेकित स्वस्थचित्तवाली यह आँख नहीं है । इसी अर्थका विहारोक्ता यह दोहा भी है : ..

तव्यो आंच अति विरहकी रहो प्रेम रस भीज ।
नैननि पे मग जल, यह दियो पसीज पसीज ॥

पति परदेश जा रहा है, उस समय पति और पत्नीके बीचमें जो बातचीत हुई पढ़ी इस श्लोकमें है :—

वाले ! कस्यपि चाग्रराणि रामय तथे मीलपित्या/दृशौ,
स्वस्ति ! स्वस्ति ! निमीलयामि नयने यायन्न शून्या दिशः ।
भायाना यथमागमिष्यमि सुदृढगम्य भाग्योदयैः ।
गन्देरा यद् वनशामिन्द्रनिर्लीपेषु सोपांजलि ॥ ४२ ॥

४२ भावार्थ :—(पति) प्रियतम ! थोड़े दिनकी तो बात है, आंसू मूँदकर कुछ दिन तुम किसी तरहसे बिता दो । (पत्नी) हां ! हां ! मैं आँखों को तबतक बन्द किये रहूँगी जबतक दिशाएँ मेरे लिये बिलकुल शून्य न हो जायँगी । (पति) घबड़ानेकी बात नहीं है, मैं बहुत जल्द लौट आऊँगा । (पत्नी) अगर आप लौटेंगे तो अपने मित्र और घरवालोंके भाग्य से । (पति) जो कुछ तुम चाहती हो वह कहो ! बोलो क्या वहना चाहती हो ? (पत्नी) जब किसी तीर्थमें जाना तो मेरे नाम तिलांजलि दे देना यस यही मैं चाहती हूँ ।

कैसा पढ़िया व्यंग्य इस श्लोकमें पत्नीने कहा है !

प्रियतमके परदेशसे आनेपर किसी स्त्रीकी दशा इस श्लोक में बड़े अच्छे ढंग से वर्णन की गयी है :

हृष्टिर्वन्दनमालिका, स्तनयुग्मं लावण्यपूर्णौ धटौ,
शुभ्राणां प्रकरः स्मितं सुमनसा, वक्त्रप्रभा दर्पणः ।
रोमांचोद्गम एव सूर्यपरुणः, पाणौ पुनः पल्लवौ,
स्वांगीरेव गृहप्रियस्य विगतस्तन्या कृतं मंगलम् ॥ ४३ ॥

४३ भावार्थ :—जब प्रियतम घरमें प्रवेश करने लगा तो उसकी प्रियतमाने अपने अंगोंहीसे यथोचित मंगलाचार पूरा किया । उसके एगटक देखनेने बन्दनवार का, दोनों स्तनोंने लावण्यरूपी जल से भरे हुए दो घडोंका मुस्कराहटने सफेद फूलकी वर्षाका, मुखकी कान्तिने दर्पणका, रोमांचने ससोंके कणोंका, हाथोंने पल्लवोंका काम दिया ।

इस श्लोकमें कोई अपने मित्रको उसकी विरह विधुरा प्रियतमाका हाल पत्र लिखकर सूचित करता है :—

यावद् यावद् भवति कल्या पूर्ण कामः शशाक
 स्तावत्तावदुद्य तिमयवपुः क्षीयते स मृगाक्षी ।
 मन्ये धाता घटयति विधुं सारमादाय तस्या—
 स्तस्माद्यावन्न भवति सखे ! पूर्णिमा तावदेहि ॥ ४४ ॥

४४ भावार्थ :—जैसे जैसे चन्द्रमा एक एक कला बढ़ता जाता है वैसे वैसे उस मृगनयनी—आपकी प्रियतमा—का सुन्दर शरीर क्षीण होता जाता है । ऐसा जान पड़ता है कि ग्रहण उसके शरीरका सार खींच खींचकर चन्द्रमाको बना रहा है । इसलिये मित्र ! जब तक पूर्णिमा न होने पावे तब तक मैं चले भाओ । नहीं तो फिर हाथ मल मलकर पछताना पड़ेगा । क्योंकि पूर्णिमाके बाद उसका अस्तित्व कहा ।

नायिका श्रवयव वर्णन.

किसी टी के अघर की तारीफ में एक कवि कहता है :—

अघरोऽयमधीराक्ष्याः घन्धुजीय प्रमाहृतः ।

अन्यजीयप्रमाहन्त ! हरतीति किमद्भुतम् ॥ ४५ ॥

४५ भावार्थ.—इस चञ्चल नेत्रवालीके अघर घन्धुजीय (गुच्छ दुपहरिया के फूल) की प्रभाको हरने वाले है, अर्थात् उनसे भी अधिक लाल और सुन्दर है । जब वे घन्धुजीय (अपने भाई के जीवन) की प्रभाको हर लेते हैं तो दूसरों के जीवन की प्रभा को हर देंगे इसमें आश्चर्य ही क्या है !

“बन्धुजीव” इस शब्दमें श्लेष है । इसके माने “गुल दुपहरिया का फूल” तथा “माई का जीवन” दोनों हैं ।

एक कवि किसी स्त्री को संबोधन करके कहता है :—

कठिनपीनपयोधरताडिता,
तव विराजति भामिनि कंचुकी ।
विजयिनस्त्रिपुरारिजिगीषया,
पटकुटीयमनोभवभूपते : ॥ ४६ ॥

४६ भाषार्थ :—हे सुन्दरि, कठोर और पीन पयोधरों के ऊपर तुम्हारी कंचुकी अतीव शोभा दे रही है । ऐसा मालूम होता है कि कामदेव रूपी राजाने महादेव के विजय करने के लिये खेमा गाड़ रखी हो ।

कोई स्त्री अपने स्तनों को क्यों छिपाए हुए है इस पर एक कवि बड़ी अच्छी उत्प्रेक्षा करता है :—

तन्वद्गुहाः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम् ।

हाराय गुणिने स्नानं न दत्तमिति लज्जया ॥ ४७ ॥

४७ भाषार्थ :—इस तुरुमार अङ्गवाली स्त्री के स्तनों ने मारे शर्म के अपने को नहीं प्रकट किया । गुणवाले (डोरीवाले) हार को हमने अपने ऊपर स्नान नहीं दिया यही उनके शर्म का कारण था । “गुणिने” इस शब्द में यहां पर श्लेष है । “गुण” माने डोरी और अच्छी बातें दोनों हैं । अतएव “गुणिने” का अर्थ यहां पर “गुणवाला” तथा “डोरी या सागा में गुंथा हुआ” दोनों हैं ।

एक रसिक कवि अपनी प्रियतमा के साथ नदी में जलक्रीड़ा

करता हुआ अपनी पत्नी के मुख और चक्षुषल की छाया जल में पड़ती हुई देखकर कहता है:—

नेयं ते मुखमण्डल प्रतिवृत्तिच्छाया न हारोद्भवा
चक्षोजौ प्रतिविम्बितौ न सलिले जाने हि तथ्यं प्रिये ! ।
अप्राप्याननसौमगं तव शशी मुक्ताचितैर्दामभिः ।
कण्ठे हेमघटद्वय परिधत् पानीयमध्यं गतः ॥ ४८ ॥

४८ भावार्थ :— हे प्रिये ! यह जो तुम जल में देख रही हो वह तुम्हारे मुख की छाया नहीं है, और यह हार जो तुम पहने हुए हो उस की भी परछाई नहीं है, और न तुम्हारे दोनों उरोजों का प्रतिविम्ब ही यह दिखाई पड़ रहा है । तो फिर है क्या ? चन्द्रमा तुम्हारे मुख की सुन्दरता को न पाकर मुक्ताग्रथित डोरी से बन्धे हुए दो घड़ों को अपने कण्ठ में लटका कर शर्म के मारे डूबने के लिये पानी के अन्दर चला गया है । अर्थात् यह तुम्हारे मुख की छाया नहीं बल्कि शशी है, हार की परछाई नहीं बल्कि मोती से गुथी हुई डोरी है, और तुम्हारे पीनपयोधरों का प्रतिविम्ब नहीं बल्कि ये दो घड़े हैं, जिन्हें गले के दोनों ओर लटका कर चन्द्रना पानी में डूब गया है ।

घोई खी पार पार गेन्द को अपने हाथों से कँक रही है । गेन्द खेलते खेलते उस का एक कमल जो वह फानों में पहिने हुए थी, उस के पैरों के पास गिर पड़ा । इसपर एक कवि कयना करता है :—

पयोधराकारधरोद्दि कन्दुकः करेण रोपादभिहन्यते मुहुः ।
इतोय नेशाश्रुनिभीतमुत्पलं स्त्रियः प्रसन्दाय पपात पादयोः ॥ ४९ ॥

४६ भावार्थ :—इस मेन्द ने उस के पयोधरों के आकार की तुलना की है, इसलिये वह बारबार उस कामिनी के करों से ताड़न किया जाता है । मैं भी तो उस के नेत्रों के समान हूँ कहीं मेरी भी खयर इसी तरह से न ली जाय, यस इसी कारण से उस सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिये वह कमल उसके चरणों पर गिर पड़ा

चन्द्रमा को ग्रहण लगनेवाला है, उस समय कोई किसी सुन्दरी स्त्री से कह रहा है :—

प्रयिश्वा इदिति मेहं मा वहिस्तिष्ठ कान्ते !

ग्रहणसमयवेला घटते शीतरश्मेः ।

तथ मुखमकलंकं घोश्य नूनं स राहु

प्रसन्ति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ५० ॥

५० भावार्थ :—सुन्दरि ! चन्द्रमा का ग्रहण अब लगने ही वाला है । इसलिये शट से घरके भीतर घुस आओ, बाहर मत खड़ी रहो । मुझे डर लगता है कि तुम्हारे निष्कलंक मुखको देखकर राहु, पूर्णमासी के चान्दको छोड़कर, कहीं तुम्हारे मुखचन्द्र को न प्रस ले । इसी ढंग का एक उर्दूका शेर भी है :—

याम पर नंगे न जाओ तुम शवे महताब में ।

चान्दनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा ॥

सुन्दर स्त्रियों के मुप को प्रशंसा में कोई कवि कहता है :—

यदपि विशुधैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं

तदपि सकलं चारु स्त्रीणां मुखेषु विलोचयते ।

सुरसुमनसः श्वासामोदे, शशीच कपोलयो

रमृतमधरे, तिर्यग्भूते विपंच विलोचने ॥ ५१ ॥

५१ भावार्थः—जिन चीजों को बड़े कष्ट से देवताओं ने समुद्र के अन्दर से निकाला था वे सब की सब सुन्दरी स्त्रियों के मुख में दिखलाई पड़ती हैं । उनके सांस में स्वर्गीय वृक्षों के पुष्पों की महक, कपोलों में चन्द्रमा की शोभा, अधर में अमृत का स्वाद, और तिरछी नज़रों में ज़हर का सा असर है ।

कुर्चों की तारीफ में किसी कवि की अनोखी सूझ है :—

यन्न माति तदंगेषु लावण्यमतिसंभृतम् ।

पिरडीकृतमुरोदेशे तत्पयोधस्तां गतम् ॥ ५२ ॥

५२ भावार्थः—जो सुन्दरता और लवनाई उस फामिनी के अंगों में न समा सकी, उसी को बिधाता ने गठरी में बांधकर पयोधरों के रूप में रख दिया । जो चीज़ खर्च होने से पच जाती है उसे लोग गठरी में बांधकर अलग एक स्थान पर रख देते हैं ।

चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय पर एक कवि की उक्ति है :—

घटते मुखसादृश्यमवाप्तुं हरिणीदृशः ।

क्षीयते भ्रूतुला मेतु मुभयोरक्षमो विधिः ॥ ५३ ॥

५३ भावार्थः—इस मृग नयनी के मुख की घराबरी पाने के लिये चन्द्रमा बढ़ता है । जब देखता है कि वह मुख की तुलना नहीं पा सकता तो घटने लगता है कि कदाचिन् उसके भौं की घराबरी पा जाय । किन्तु वह उसमें भी अटुलकार्य होता है । इसी भाव का एक फारसी का शेर भी है :—

मदशुद्द तमाम ताचो रुने ऊ शयद् न शुद्द ।

फाहीद घाज़ ता ख़मे ययरू शयद्, न शुद्द ॥

फिस्ती ख़ो के सौन्दर्य की प्रशंसा में एक कवि कहता है :—

सा दृष्टा येन वा दृष्टा मुपिताः सममेव ते ।

हृदयं हृतमेकैरामन्येषां चक्षुषोः फलम् ॥ ५३ ॥

५३ भावार्थ :—जिन्होंने उसे देखा और जिन्होंने उसे न देखा दोनों ही ठगे गये । जिन्होंने उसे देखा उनका हृदय चोरी हो गया, और जिन्होंने उसे न देखा उनकी आंखोंका फल चोरी हो गया । अर्थात् जिन्होंने उसे देखा उनका हृदय उस पर अनुरक्त हो गया और जिन्होंने उसे न देखा उनकी आंखें निष्फल हैं ।

युवायस्या के आते ही स्त्रियों के अंगों में क्या क्या परिवर्तन होते हैं, इस श्लोकमें बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया गया है :—

श्रीणीभागस्यजति तनुतां सेवते मध्यमागः,

पद्मपां मुस्तास्तरुगतयः संधिता लोचनाभ्याम् ।

धत्ते यक्षः कुचसचिग्रतामद्वितीय च वक्त्रं,

तद्ग्रात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥ ५५ ॥

५५ भावार्थ :—नय यौवन के आते ही स्त्री के अंग एक दूसरे से गुणों के परिवर्तन करने में दत्तचित्त हुए । नितम्ब पतलेपन को छोड़ रही है और कटि देश उसे ग्रहण कर रहा है । अर्थात् नितम्ब स्थूल और कमर पतली होती जा रही है । पैर चंचलता को त्याग रहे हैं और नेत्र उसे स्वीकार कर रहे हैं । अर्थात् चाल में गंभीरता और आँखोंमें चंचलता आ रही है । उसका वक्ष स्थूल कुच (द्वितीय)—सहित और मुख अद्वितीय हो रहा है । इसी तरह उसके अंग आपसमें एक दूसरे से गुणों का बदला बदला कर रहे हैं ।

कोई स्त्री बार बार गेन्दको अपने हाथोंसे उछाल रही है ।
इस पर एक कवि गेन्दको संबोधन करके कहता है :—

चिदितं ननु फन्दुक ! ते हृदयं प्रमदाधर संगमलुब्धमनाः ।
वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि ॥५६॥

५६ भावार्थ :—गेन्द ! मुझको तेरे हृदयकी यात, मालूम हो गयी । तू इस कामिनीके अधर रसको पान करना चाहता है । इसी लिये उसके करकमलसे फँका जाने पर भी तू बार बार गिरता है और बार बार उठता है ।

सब अङ्ग तो आभूषणसे सजाये जाते हैं पर केश बान्धे जाते हैं । इस पर किसी कविकी अनोखी सूझ है :—

शान्ते मन्मथसगरे रणभृता सत्कारमातन्यति
चासोऽदाञ्जघनस्य पीनकुचयोर्द्वारं श्रुतेः कुण्डलम् ।
विम्रोष्ठस्य च धीटिकां सुनयना पाण्यो रणत्फड्गणे ।
पद्माल्पविनि केशपाशनिचये युक्तोद्दियन्धकमः ॥ ५७ ॥

५७ भावार्थ :—कामयुद्ध समाप्त होने पर लड़ाईमें भागे रहनेवालोंको पुरस्कार देनेके समय कामिनीने जंघाओंको साड़ी, कुचोंको हाथ, कानोंको कुण्डल ओठोंको पानकी धीड़ी और हाथोंको फंफण दिया । केश पीछे रहे इसलिये वह उन्हें बान्ध रही है । लड़ाईमें पीठ दिपलानेवालोंको सजा देना उचित ही है ।

किसी मृगनयनीकी आंजोंकी तारीफमें एक कवि कहता है :—

श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं
यित्तु स्पृष्टं गरलमेतदश्यामृतं च ।

तोचेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव ।

मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः ॥ ५८ ॥

५८ भावार्थ :—इस मृगनयनीकी आंखोंमें जो यह कालापन और सफ़ेदी है सो असलमें कालापन और सफ़ेदी नहीं है बल्कि ज़हर और अमृत है । अगर उसकी आंखोंमें ज़हर और अमृत नहीं है तो उनके देखते ही क्यों नययुवक लोग एक साथ ही मतवाले भी हो जाते हैं और आनन्दमें भी मर जाते हैं । अर्थात् उसकी आंखोंमें जो कालापन है वह ज़हर है जिसके असर से युवकगण मदमत्त हो जाते हैं और उसकी आंखोंमें जो सफ़ेदी है वह अमृत है जिसका असर पड़ते ही वे लोग आनन्द लहरी में गोता लगाने लगते हैं । इस श्लोकका भाव नीचे लिखे हुए दोहे से लिया गया है, पर दोहेका भाव इस श्लोक के भावसे कहीं ऊँचा है ।

अमी हलाहल मद भरे स्वेत श्याम रतनार ।

जियत, भरत, झुकि झुकि परत जेहि चितयत एक बार ॥

सन्ध्याकाल और चन्द्रवर्णन ।

चन्द्रमा में जो कलंक है उस पर किसी कवि ने कल्पना की है :—

अंकं के ऽपि शशीकिरे, जलनिधेः पंकं परे मेतिरे

सारंगं कतिचिच्च संजगदिरे, भूमेश्च विंव परे ।

इन्दी यहलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दूरीदृश्यते

तन्मन्ये शविभीतमन्यतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते ॥ ५९ ॥

५६ भावार्थ :—चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है उसे कोई कलंक समझते हैं ; कोई यह समझते हैं कि चन्द्रमा समुद्र से मथ कर निकाला गया है अतएव यह काला धब्बा समुद्रका कीचड़ है जो उसमें लगा रह गया है ; कोई उसे मृग समझते हैं इसी से चन्द्रमा मृगलाञ्छन कहा जाता है ; और कोई चन्द्रमा पर पड़ा हुआ पृथ्वी का प्रतिबिम्ब उसे मानते हैं । पर मैं तो यह समझता हूँ कि चन्द्रमा में जो यह नीलम के टुकड़े के समान काला दाग दिखलाई पड़ता है वह अन्धकार है जो सूर्य से डरकर चन्द्रमा की गोदमें शरण लेकर बैठा हुआ है ।

किसी कवि ने नीचे लिखे हुए श्लोक में सायंकाल का वर्णन करते हुए अच्छा “समासोक्ति” अलंकार बांधा है । इसमें चन्द्रमा नायक और रजनी नायिका दिखलाई गई है :—

अंगुलीभिरिव केशसंचयं संनिगूह्य तिमिरं मरीचिभिः ।

कुङ्कुमलीकृतसरोजलोचनं घुम्यतीव रजनीमुखं शशी ॥६०॥

६० भावार्थ :—चन्द्रमा अपनी किरणरूपी अङ्गुलियों से अन्धकार रूपी केशों के समूह को एकड़ कर निशारूपी नायिका के मुख (सन्ध्याकाल) को घुमन कर रहा है । सूर्यास्त हो जाने पर मुझे हुए कमल इस नायिका के मुँह हुए नेत्र हैं । चन्द्रमा नायक है, निशा नायिका है, अन्धकार समूह उस नायिका के घाल है, किरणें उस नायक की अङ्गुलियाँ हैं जिनसे यह नायिका के बालोंको पकड़ रहा है, मुद्रित कमल उस नायिका के प्रेम में

मुँदे हुए नेत्र हैं, और सन्ध्याकाल (रजनीमुप) उस नायिका का मुख है ।

सन्ध्याकाल में उदय होते हुए चन्द्रमा पर किसी कवि की अच्छी सूझ है । यह श्लोक काव्यप्रकाश में “अस्मानक्षसमास” नामक दोष के उदाहरण में दिया गया है ।

“अद्यापि स्तनशैलदुर्गत्रिपथे सीमन्तिनीनां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मान एष धिगिति !” क्रोधादिवालोहितः ।
प्रोद्यद्दूरतप्रसारितकरः कर्पस्यसौ तत्क्षणात्
फुल्लकैर्यकोपनिःसखलित्रेणीरुपाणं शशी ॥ ६१ ॥

६१ भावार्थः—“मानवती स्त्रियोंके हृदयमें, जो स्तनरूपी पहाड़ी किलोंसे सुरक्षित है, मान अब भी रहना चाहता है, धिक्कार ! हे उसे” ऐसा खयाल कर चन्द्रमा क्रोधके मारे लाल हो गया, और उसी समय दूर दूर तक फैले हुए किरण रूपी हाथोंसे फूली हुई हुईकी कलियोंसे निकलती हुई भ्रमर पंक्ति रूपी तलवारको सहसा खींच रहा है कि मान को इस अपनी तलवारके जोरसे पचास करे । सन्ध्याकाल के बाद चन्द्रमा के उदय होने पर यड़ी से यड़ी मानवती स्त्रियोंका भी मान दूर हो जाता है इस बात को कविने कैसी सूनी के साथ दिखलाया है ।

अस्तावल को जाते हुए सूर्य को देख एक कवि कहता हैः—

अयं मन्दद्युतिर्मासानस्तं प्रति यियासति ।
उदयः पतनायेति धीमनो बोधयन् नरान् ॥ ६२ ॥

६२ भावार्थः—सायंकाल में प्रकाश रहित और तेजोहीन हो

संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ ।

र सूर्य, धनवान् मनुष्यों को यह बतलाता हुआ धीरे धीरे अस्त
रहा है कि “जिसका एक बार उदय हुआ है उसका अस्त
। अवश्य होगा ।”

सन्ध्या समय अस्ताचलको जाते हुए सूर्यको देखकर एक
वि कहता है :—

कोऽत्र भूमिवलये जनान्मुधा
तापयन्नुचिरमेति सपदः ।
वेदयन्निति दिनेन भानुमा—
नाससाद् घरमाचल तत ॥ ६३ ॥

६३ भावार्थ :—“इस पृथ्वीमण्डल पर कौन ऐसा है जो
रथ लोगोंको संताप पहुँचा कर भी चिरकाल तक उद्य
न रहे और संपत्तिका भोग करता रहे”—इस बातको मानों
तलाता हुआ सूर्य ससारको तपा कर दिन भरके बाद ही
स्ताचलको प्राप्त हो रहा है ।

सायंकालको समुद्रमें डूबते हुए सूर्यको देखकर किसी
विने एक अनोखी कल्पना की है :—

कृत्या प्रसुद्धकमलामखिलां त्रिलोकी—
ममोनिधेर्निशति गर्भमसाविदानीम् ।
अन्त प्रसुप्तहरि नाभिसरोजबोध—
पीतहलीव भगवानरविन्द यन्धु ॥ ६४ ॥

६४ भावार्थ :—तीनों लोकोंके सब कमलोंको चिन्तासित
रके अरविन्द यन्धु (कमलोंके मित्र) सूर्य भगवान् अब क्षीर-

सागरमें सोते हुए विष्णु भगवान्‌के नामसे उगे हुए कमलको विकसित करनेके लिये समुद्रके गर्भमें लीन हो रहे हैं ।

इस श्लोकमें किसी कविने प्रभातका बहुत ही प्राकृतिक वर्णन किया है :—

अभूत्प्राची विंगा रत्नपतिरिव प्राश्य कनकं
क्षणाक्षीणा तारा नृपतय इयानुद्यमभृतः ।
गतच्छापश्चन्द्रो युधजन इव प्राम्यसञ्चसि
न राजन्ते दीपाश्चिण रहिता नामिव गुणाः ॥ ६५ ॥

६५ भाषार्थ :—सोना पी लेनेके बाद पारा जैसे तपाए हुए सोनेकी भांति चमकने लगता है उसी तरह पूर्ण दिशा भी सूर्यकी लालीसे तपाए हुए सोनेकी तरह चमक रही है । थालसी राजाओंकी तरह तारे भी क्षणभरमें क्षीण होकर लोप हो गये । जिस तरहसे गयारोंके बीचमें बुद्धिमानोंकी श्री हत हो जाती है उसी तरह चन्द्रमा भी प्रभातकालमें श्रोत होकर अस्त हो रहा है । दीप, वैसे ही शोभा नहीं देते जैसे धनहीन—वे कौड़ी पैसे वाले मनुष्यके गुण शोभा नहीं देते ।

चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है वह क्या है इस पर किसी कवि ने इस श्लोक में अनोखी कल्पना की है । यह श्लोक काव्य प्रकाशमें अपह्नुति अलंकार के उदाहरण में दिया गया है ।

अश्रासः प्रागल्भ्यं गरिणतस्तवः शैलतमये !
कलंको नैवायं विलसति शशांकस्य वपुषि ।
अमुष्येयं मन्ये विगल्यमृतस्यन्दशिशिरे
रतिश्रान्ता शेते रजनिष्मणी गाढमुखसि ॥ ६६ ॥

६६ भाषार्थः—शिव पार्वतीसे कहते हैं:—“हे शैलतनये, यह जो पूर्णमासीके चान्द में बड़ा सा काला घब्बा दिखलाई पड़ता है वह कलक नहीं है । तो फिर है क्या ? निशा रूपी नायिका रति से खिन्न होकर अपने प्रियतम की गोद में, जो अमृत के प्रवाह से शीतल हो रही है, गाढ़ निद्रामें सो रही है ।”

चन्द्रमा पर किसी कविने कल्पना की है :—

इद व्योमसरोमर्ध्ये भाति चन्द्रसितोत्पलम् ।

मलिनोऽन्तर्गतो पत्र कलंको भ्रमरायते ॥ ६७ ॥

६७ भाषार्थः—आकाश रूपी तालाबके बीच में यह चन्द्रमा एक सफेद कमल है, जिस पर कलंक भौंरे के समान शोभा दे रहा है ।

चन्द्रमा की किरणों का नीचे के श्लोक में बड़ा अच्छा वर्णन है । यह श्लोक फाव्यप्रकाश में भ्रान्तिमान् अलंकार के उदाहरण में आया है :—

कपाले मार्जारः पय इति करांल्लेदि शशिन—

स्तस्यच्छिद्रभ्रोतान् विसमिति करो संकलयति ।

रतान्ते तत्पस्यान्हरति यनिताप्यंसुकमिति

प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो ! विभ्रमयति ॥ ६८ ॥

६८ भाषार्थः—कटोरे पर पड़ती हुई चन्द्रमा की किरणों को दिलार यह समझ कर कि दूध है जीम से चाट रहा है । पेड़ के पत्तों से छनती हुई किरणों को हाथी यह समझ कर कि कमल की नाल है सूँठ से उपाड़ रहा है । रति के अन्त में पलंग पर

।इती हुई चन्द्रमा की किरणों को खी यह समझ कर कि साड़ी है पलंग पर से उसे उठाने के लिये हाथ फेर रही है । प्रमा के मद में मतवाला हो कर चन्द्रमा समस्त जगत को भ्रम में डाल रहा है ।

किसी कवि ने रात के वर्णन में कापाली का अच्छा रूपन बांधा है:—

ज्योत्स्नामस्मञ्जुरणधवला विम्रती तारकासो—

न्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम् ।

द्वीपादुद्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले

न्यस्तं सिद्धांजनपरिमलं लाञ्छनस्यच्छलेन ॥६६॥

६६ भावार्थ:—रात्रि एक कापाली है । यह चान्दनी रूपी भस्म को रमाए हुए, तारा रूपी अस्त्रियों को धारण किये हुए, चन्द्रमा रूपी खप्पर में कलंक रूपी ममूत को रक्खे हुए, एक द्वीपसे दूसरे द्वीप में भ्रमण कर रही है । जैसे कापाली अन्तर्धान हो जाती है उसी तरह यह भी दिन में छिप आया करती है ।

किसी ने पूर्णिमा की रात्रि तथा चन्द्रमा का अच्छा वर्णन किया है । यह श्लोक साहित्य दर्पण में अपह्नुति अलंकार के उदाहरण में दिया गया है:—

नेहं नमोमण्डलमम्बुशशिर्नेताश्च तारा नवफेनमंगाः ।

नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलंकःशयितो मुरारिः॥७०॥

७० भावार्थ:—यह आकाश नहीं बल्कि क्षीरसमुद्र है, ये तारे नहीं बल्कि समुद्र के फेन हैं, यह चन्द्रमा नहीं बल्कि गोड़िरी

मारे शेष नाग है, और यह कलंक नहीं बल्कि विष्णु भगवान् शेषशय्या पर सो रहे हैं ।

चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है वह क्या है ? इसपर एक कवि कहता है :—

पीतमेतदलिवृन्दमेवकं ध्वान्तमेव सकलं हिमत्विषा ।

स्वच्छविग्रहतया शशाकृतेः चन्द्रमना धहिरिवास्थ लक्ष्यते ॥७१॥

७१ भावार्थ.—चन्द्रमा ने उदय होते ही भौतों के समान काले अन्धकार को यिल्कुल पी लिया । वही अन्धकार, चन्द्रमा का शरीर अत्यन्त स्वच्छ होने से, शशांक के रूप में बाहर झलक रहा है ।

रात्रि के अन्धकार में घर घर में दीपक का प्रकाश कैसा शोभायमान होता है । उसी का, घर्णन किसी ने बहुत अच्छा किया है :—

महद्विरोधस्तमसामभिद्रुतो भयेऽप्यसंमूढमतिर्भ्रमनुशितौ ।

प्रदीपनपेण गृहे गृहे स्थितौ विबुध देहं बहुधेव भास्करः ॥७२॥

७२ भावार्थ.—यद्यपि सूर्य अन्धकार के समूह से छिन्न भिन्न किया गया तथापि वह धनड़ाया नहीं, बल्कि उसने अपना अस्तित्व कायम रखनेकी दूसरी तरकीब निकाली । दिन में वह केवल एक धा, अब वह अपने शरीर के बहुत से टुकड़े कर प्रदीप तथा लैम्प के पेश में घर घर में विराजमान है ।

चन्द्रमाके बारे में किसी कवि ने बहुत ही अनोखी कल्पनायें की हैं :—

लक्ष्मीक्रीडातडागो, रतिघवलगृहं, दर्पणो दिग्वधूनां,
पुष्पं श्यामालतायास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यातपत्रम् ।
पिएडीभूतं हरस्य स्मितममरसरत्तिपुण्डरीकं, मृगाको,
ज्योत्स्नापीयूषवापी, जयति सितवृषस्तारकागोनलस्य ॥ ७३ ॥

७३ भावार्थ :—यह चन्द्रमा लक्ष्मीदेवी का क्रीडासर है, कामदेवकी स्त्री रति का सफेद घर है, दिशारूपी घघूरियों के मुख देखने का दर्पण है, रात्रि रूपी लता का सफेद फूल है, त्रिभुवन विजयी कामदेव का यह श्वेतछत्र है। अथवा महादेवजी ने अट्टहास किया है वही हास्य पिएडीभूत होकर चन्द्रमा हो गया है। अथवा आकाश गंगा मन्दाकिनी में पिला हुआ यह कमल का फूल है। या चान्दनीरूपी अमृत का यह सरोवर है। अथवा तारारूपी गीओं के बीच में यह एक सफेद बेल है।

सन्ध्याकाल के वर्णन में किसी कवि ने इस श्लोक में अच्छी अच्छी उपमाएँ दी हैं :—

मसनिन इव विद्या क्षीयते पङ्कजधी,
गुणिन इव कुट्टेशे वैन्यमायान्ति भृङ्गाः ।
कुतृपतिरिव लोकान् पीडयत्यन्धकारे
धनमिव कृपणाना व्यर्थतां याति वक्षुः ॥ ७४ ॥

७४ भावार्थ :—सन्ध्या समय कमलों की शोभा वैसी ही क्षीण हो रही है जैसी कि दुर्बलसन्ध्या में पड़े हुए विद्यार्थियों की विद्या क्षीण हो जाती है। कमलों के मुंद जाने से भरे वैसे ही दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं, जैसे किसी खराब देश में पहुँच कर गुणों की कदर न होने से कोई गुणी मनुष्य दुःख पाता है।

अन्धकार मनुष्यों को वैसे ही पीड़ा दे रहा है जैसे दुष्ट अत्याचारी राजा अपनी प्रजाको पीड़ा देता है । अन्धकार के कारण आँखें वैसे ही व्यर्थ हो रही हैं जैसे सूफका धन, जो न दिया जाता है न मोगा जाता है, व्यर्थ है ।

इस श्लोकमें सन्ध्याका वर्णन करते हुए किसी कविने नाटक का सर्वानुपूर्ण रूपक बड़ी खूबीके साथ बाँधा है :—

सन्ध्याशोणाम्बरजवनिका, कामिनोः प्रेमनाट्यं,
नान्दी भ्राम्यद्भ्रमरविरतं, मारिषः कोऽपि कालः ।

तारापुष्पाञ्जलिमिव किरण, सूचयन् पुष्पकेतो

नृत्त्यारम्भं, प्रविशति सुधादीधितिः सूत्रधारः ॥ ७५ ॥

७५ भावार्थ :—सन्ध्याकालीन लाल भाकाश इस नाटकका पर्दा है, कामी पुरुष और स्त्रियोंका प्रेम इस नाटकका प्लॉट (कथानक) है, इधर उधर उड़ते हुए मीरोंका भ्रम भ्रम शब्द इस नाटकका नान्दी पाठ है, कोई ऐसा अलौकिक सन्ध्याकाल जो है वही मारिष (सहायक सूत्रधार) है, और चन्द्रमा ही इस नाटकका सूत्रधार है, जो तारारूपी पुष्पोंको बिखेरता हुआ, और इस यातको सूचित करता हुआ कि अब कामदेवका नृत्य आरम्भ होनेवाला है, भाकाश रूपी स्टेज (रंगमंच) पर देखिये प्रवेश कर रहा है ।

ऋतु वर्णन ।

इस श्लोकमें भीष्म ऋतुका बहुत प्रारुतिक वर्णन है :—

तदा मही विरहिणामिय चित्त वृत्ति—

रन्ध्याध्यगेषु वृषणोऽथिव वृद्धिमेति ।

सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलोनु

छाया सतीव न च मुचति पादमूलम् ॥ ७६ ॥

७६ भावार्थः—पृथ्वी वैसी ही तप रही है जिस तरहसे वियोगी प्रेमियोंका हृदय वियोगसे जला करता है । चटोहियोंमें प्यास वैसी ही बढ़ रही है, जिस तरहसे रूपण मनुष्योंमें धनकी कृष्ण दिन पर दिन बढ़ती जाती है । सूर्य अपनी किरणोंसे जगत्को वैसी ही पीड़ा दे रहा है जैसे दुष्ट मनुष्य अपने वाग्वाणोंसे लोगोंको पीड़ा दिया करता है । छाया सती और पतिमता स्त्रीके समान वृक्षकी जड़को नहीं छोड़ती ।

ग्रीष्म ऋतुकी दोपहरका वर्णन किसीने इस श्लोकमें अच्छा किया है :—

दुःसहतापमयादिय संप्रति मध्यस्थिते दिवसनाये ।

छायामिव धाञ्छन्ती छायापि गता तस्तलानि ॥ ७७ ॥

७७ भावार्थः—दोपहरमें सूर्यके ठीक मध्य आकाशमें आने पर, असहनीय तापके भयसे, छाया भी छायाकी इच्छासे वृक्षके नीचे चली गई । दो पहरको बारह बजे छाया सिकुड़ती सिकुड़ती ठीक वृक्षके नीचे आजाती है, इसी बातको इस श्लोकमें कविने कितनी सुन्दरतासे कहा है ।

इसी भावका विहारीका यह दोहा भी है :—

बैठि रही अति सघन वन, पेठि सदन मन मांहि ।

निरसि दुपहरी जेठकी, धांहौ चाहत छाहि ॥

इस श्लोकमें भी ग्रीष्म ऋतु की दोपहरका वर्णन अच्छा है :—

परपुरुषादिव सवितुः संप्रति भीताः करग्रसंस्पर्शात् ।

कुलवध्य इव सलज्जाः प्रविशन्ति गृहोदरं छायाः ॥ ७८ ॥

७८ भावार्थः—सूर्य की किरणें कहीं मुझे स्पर्श न करलें
यस इसी डरसे गरमीमें छाया घरके भीतर घुसकर बैठी है ।
जैसे कोई लज्जाशीला कुलकामिनी परपुरुषके करस्पर्शसे डरती
हुई घरके भीतर घुस जाती है ।

वर्षा कालकी रातका वर्णन किसीने बहुत अच्छा किया
है:—

क्षपा क्षामीकृत्य प्रसभमप हृत्याम्बु सरितां ।

प्रताप्योर्चो हृत्स्ना तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ॥

फ संप्रत्युष्णाशुर्गत इति तदन्येषणपरां !

स्तङ्गिहीपालोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः ॥ ७९ ॥

७९ भावार्थः—रात्रिको दुर्बल और क्षीत कर, नदियों के
जलको थल पूर्वक अपहरण कर, समस्त पृथ्वीको तपा कर,
और जितने घन और उपवन हैं उनको सुखा कर अत्याचारी
और निर्दयी सूर्य अब कहां छिप कर बैठा है यस उसीको दूँद-
ने के लिये हाथमें विजुली रुपी दीपक लेकर मेघ एक दिशासे
दूसरी दिशामें घूम रहे हैं ।

वर्षाकालका वर्णन इस श्लोकमें बहुत ही सुन्दर किसीने
किया है:—

एवं यस्ते फलयिककण्ठरुचिर कादम्बिनीरुग्धल

घर्षा पारयतीव ददुर्खुलं कोलाहलैरुन्मदम् ॥

गन्धं मुञ्चति सितलाजसदृशं यथैष दग्धा स्थली ।

दुर्लभ्योऽपि विभाव्यते कमलिनीहासेन भासां निधिः ॥८०॥

८० भावार्थ—गोरैयाके कण्ठके समान काले मेघ आकाश में छाये हुए हैं, मानों आकाश रूपी फर्श पर काला गलीचा बिछा दिया गया हो; मेढ़क लोग टर्टर लगाए हुए हैं, मानों वेदपाठी छात्र वेदपाठ कर रहे हों, ग्रीष्मतप्ता पृथ्वी घर्षाकी बूंदोंसे सिक होकर बँसीही सुगन्ध छोड़ रही है जैसी सुगन्ध धानके लावाके घीमें भूजनेसे उठती है; यद्यपि सूर्य दृष्टिमें नहीं आता तब भी कमलोंके विफाशसे उसके अस्तित्वका अनुमान किया जा सकता है ।

यर्षा कालकी रातका वर्णन इस श्लोकमें बहुतही भई सूझा है :—

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो ।

मुखं निशायामभिसारिकायाः ॥

धारानिपातं सह किं नु यान्त

अन्द्रोयमित्यार्त्ततरं ररास ॥८१॥

८१ भावार्थ—यर्षा कालकी अंधेरी रातमें अभिसारिका नायिका अपने यारके घर जा रही है । उसके मुखको बिजुली की नेत्रोंसे देख यादलोंको भ्रम होता है कि निरन्तरकी धारापात में चन्द्रमा आकाशसे पृथिवी पर गिर गया क्या ? हाथ गरज्जुग हुआ ! इसी सोचमें भर वे बड़ी जोरसे चिल्लाने लगते हैं । यह गरजनेका शब्द उन्हीं यादलोंका चोंक कर चिल्लाना है ।

हेमन्त ऋतुके दिनोंके वर्णनमें किसीने बड़ी अच्छी उपमाएँ दी हैं:—

लज्जा प्रौढमृगीदृशामिव, नयस्त्रीणां स्तेच्छा इव ।
स्वैरिण्या नियमा इव, स्मितरुचः कुल्यांगनानामिव ॥
दम्पत्योः कलहा इव, प्राणयिता चारांगनानामिव ।
प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हेमन्तिका यासराः॥८२॥

८२ भावार्थ:—प्रौढ़ा स्त्रियोंकी लज्जाके समान, नययुवतियों की सुरतेच्छाके समान, यथेच्छाचारिणी स्त्रियोंके शील और नियमके समान, कुलीन स्त्रियोंकी मुस्कुराहटके समान, पति और पत्नीके परस्पर प्रेम-कलहके समान तथा वेश्याओंकी प्रीतिके समान हेमन्त ऋतुमें दिन आते हैं और फिर शीघ्रही बिलीन भी हो जाते हैं ।

शरत्कालके वर्णनमें किसी कविने इस श्लोकमें भी अच्छी अच्छी उपमाएँ दी हैं:—

वृद्धांगनेव विजही सरिदुद्धत्वम् ।
वेदान्तिनामिव मतं शुचि भीरमासीत् ॥
चन्द्रप्रभा युवतिवक्रमिवाद्भुताभूत् ।
प्राह्मण्यदैर्न्यमिव केकिरुतं न रेजे ॥८३॥

८३ भावार्थ:—शरत् कालमें नदियोंका जोम वैसाही दूढ़ गया जैसे बुढ़ापेमें स्त्रियोंका जोम दूढ़ जाता है, जल वैसाही साफ हो गया जैसे वेदान्तियोंका सिद्धान्त स्वच्छ और चिमल होता है, चन्द्रमाका प्रकाश वैसाही निर्मल और शोभा युक्त है जैसे सुन्दर युवतियोंका मुखारविन्द होता है और मोरोंका

किकियाना वैसाही कर्ण कटु हो रहा है जैसी ग्राह्मणोंकी दीन वाणी तथा शोकोद्गार कानोंको प्रिय नहीं लगता ।

शिशिर ऋतुकी ठंडी हवा चिरहिणी स्त्रियोंको कैसी दुःख दायी होती है और उससे उनको कितनी कामपीड़ा होती है इसीका वर्णन किसी कविने अच्छे ढंगसे किया है :—

शिशिरस्सीकरवाहिनि मारुते चरति शीतभयादिव सत्वरः ।

मनसिजः प्रविशेश चियोगिनीहृदयमोहित शोक हृताशनम् ॥८५॥

८५ भावार्थ :—शिशिरकालमें ठंडी हवा चलनेपर शीतसे बचनेके लिये कामदेवने चियोगिनी स्त्रियोंके हृदयोंमें, जिनमें विप्लवमि घघक रही है, प्रवेश किया ।

किसी कविने जाड़ेका बहुत ही प्राकृतिक वर्णन किया है :—

विमीषयति शीतल जल महिर्गुप्मानिव

प्रलोभयति कामिनीस्तन इवास्तधूमानलः ।

सुताप्तय इव त्विषो दिनमणोः सुखं कुर्वते

कुटुम्ब कटुवागिव व्यथयते तुषारानिलः । ८५

८५ भावार्थ :—ठंडा जल साक्षात् सर्पकी तरह डरावना मालूम पड़ता है । जिसमेंसे धुँआ नहीं उड़ता ऐसी आग कामिनीके स्तनके समान देखनेवालोंको अपनी ओर खींच रही है । सूरजका घाम पुत्रजन्मकी तरह सुख पहुँचा रहा है । ठंडी ठंडी हवा शरीरमें वैसी ही लगती है जैसी अपने कुटुम्ब-वालोंकी कटुई यातें हृदयमें लगती हैं ।

जाड़ेका वर्णन करता हुआ कोई कवि किसी धनी मनुष्य या राजासे कहता है :—

शीतार्त्ता इव संकुचन्ति दिवसाः नैवाम्बरं शर्वरी
 शीघ्र मुंचति, पश्य देव ! ह्रुतमुक्कोणं गतो भास्करः ।
 त्वं चानङ्ग हुताशभाजि हृदये सीमन्तिनीनां स्थितो
 नास्माकं वसनं नवा युवतयो ब्रूहि क यामो वयम् ॥ ८६

८६ भावार्थ :—हे राजन् ! आजकल दिन भी सड़ोंके मारे
 ठिठुर कर छोटे हो गये हैं, रात भी जाड़ेके मारे जल्दी अम्बर
 (आकाश अथवा कपड़ा या रज़ाई) को नहीं छोड़ती, सूर्य भी
 आग तापनेके लिये अग्निकोणको चला गया, आप भी उन कामि-
 नियोंके हृदयमें सदा निवास करते हैं जिनका हृदय हमेशा
 कामाग्निसे जला करता है । हमारे पास न तो कपड़ा और न
 युवतियां हैं । घतलाइये ऐसे जाड़ेमें हम क्या करें ।

यसन्त कालके वर्णनमें किसी कविने बड़ा अनोखा रूपक
 बाँधा है :—

जगद्विजयरूपके पठति सूत्रधारो मधा—
 यति प्रमदकोकिला कलकलच्छलान्मंगलम् ।
 रूपं जवनिकां हरन् मृगदृशां मनोरंगत—
 स्ततः प्रविशति स्वयं कुसुमसायको नायकः ॥ ८७

८७ भावार्थ :—“जगद्विजय” नामके नाटकके प्रारंभमें वस-
 न्तरूपी सूत्रधार जय मधमें मतवाली कोकिलाओंकी फूँकरूपी
 नान्दीका पाठ कर चुका तब मृगनयनियोंके मन रूपी रंगमंच
 (स्टेज) से मानरूपी जवनिकाको हटाता हुआ कामदेव रूपी
 नायक प्रवेश करता है ।

यश और राजस्तुति

किसी राजाकी तारीफमें एक कवि कहता है :—

देव त्वयशसि प्रसर्पति जगत्पद्मोसुद्योर्ध्वं श्रव—

अर्द्धं रावण कौस्तुभाः स्थितिमिरामन्यन्त दुग्धाम्बुधी ।

किन्त्येकः पुनरस्ति दूषणकणो यश्चोपयाति त्रमा—

रुष्णं श्रीः, शितिकण्डमद्रितनया, नीलाम्बरं रोहिणी ॥८८॥

८८ भावार्थ :—हे राजन्, आपका यश जगत् में फैलते ही

लक्ष्मी, सुधा, उर्ध्वः श्रवा, चन्द्रमा, जेरायत हाथी, कौस्तुभमणि
इत्यादि जितने पदार्थ समुद्र-मन्यन से निकले थे सब के सब
फिर से अपना वास हीर समुद्र में भ्रमरने लगे । लेकिन एक
यात ज़रा दोष की है,—वह यह कि समस्तयस्तु के दरेत हो
जानेसे लक्ष्मी भ्रमसे रुष्णके पास, पार्यतीजी शितिकण्ड महा
देवके पास, और रोहिणी नीलवस्त्रधारी यलदेवके पास नहीं
जातीं, क्योंकि आपके यशके प्रतापसे रुष्णका शरीर, महादेवका
फण्ड और यलदेवका नीला वस्त्र सब का सब सफेद हो गया ।
इसीसे लक्ष्मी इत्यादिको रुष्ण इत्यादिके दारेमें भ्रम हो रहा है ।

किसी राजाकी तारीफमें एक कवि कहता है :—

यथा यथा ते सुयशो विवर्द्धते सिता त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम् ।

तथा तथा मे हृदयं चिद्व्यते प्रियालकालीघवत्त्वशक्या ॥८९॥

८९ भावार्थ :—राजन्, तीनों लोकोंको सफेद करता हुआ
आपका यश ज्यों ज्यों फैल रहा है त्यों त्यों मेरे हृदयमें शरा
बढ़ती जाती है कि कहीं मेरी प्रियाकी अलकावली भी सफेद न
हो जाय । संस्कृत कवियोंने यशका वर्णन श्वेत किया है ।

लक्ष्मी और सरस्वती ।

किसी राजाको आशीर्वाद देता हुआ एक कवि कहता है—

हिमशिशिरसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु ।

स्तनतपनवनाभोहर्म्यगोक्षोरपाने ॥

सुखमनुभव राजन् ! शत्रवो यान्तु नाशं ।

दिवसकमललज्जाशर्यरीरेणुकैः ॥६०॥

६० भावार्थ—हे राजन् ! हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, तथा शरत् इन छह ऋतुओंमें आप कमसे (१) खियों के स्तन (२) सूर्यका घाम, (३) वन तथा घास (४) नदी तथा तालाबका जल, (५) ऊँचे ऊँचे महल तथा दुमहले, (६) और शीका दुग्धपान इनसे ऋतुओंके अनुसार सुख अनुभव करें । और आपके शत्रु यथाक्रम, (१) दिन, (२) कमल, (३) लज्जा, (४) रात, (५) धूल तथा (६) कीचट्टके साथ साथ, ऋतुओं के अनुसार नाशको प्राप्त हों ।

किसी धनीके द्वारसे दुरदुराया गया कोई निष्किचन सरस्वतीका भक्त कहता है—

“निद्राति, स्नाति, भुंक्तै, चरति, वचंभर शोषयत्यन्तरास्ते ।

दीप्यत्यक्षैर्न चार्थं गदितुमयसरो, भूय आयाहि याहि ॥”

इत्युद्दण्डः प्रभूणामसहृदधिरुतैर्वारितान् द्वारि दीना—

नरमान् पट्यान्धिरुन्ये ! सरसिद्वहस्वामन्तरापराम् ॥६१॥

६१ भावार्थ—“सरकार धनी सो रहे हैं, अथ जान कर रहे हैं, अभी पा रहे हैं, अभी चेहलबदमी घर रहे हैं, अथ वालोंको सुगा रहे हैं, इन वक्त ज्ञानान्णानेमें तशीक रखते हैं, अभी

पासा खेल रहे हैं, यह समय बोलनेका नहीं है, अमी जाओ, फिर आना"—इस तरहसे बारबार उद्धत, तथा धनके मदमें मत्वाले अमीरों के द्वार पर अधिकारी पुरखोंसे रोके गये हम को भी, हे लक्ष्मी ! अपनी कृपाकंठाक्षसे एक बार देख लो तो हम निहाल हो जायें ।

मूर्खोंके पास लक्ष्मी क्यों आती है और विद्वान्के पास क्यों नहीं आती, इस पर किसीने बहुत अच्छा कहा है:—

पद्मे ! भूद जने ददासि द्रविणं विद्वत्सु किं मत्सरो ?

नाहं मत्सरिणी, न चापि चपला, नैरासि मूर्खे रता ॥

मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रुयताम् ।

विद्वान्सर्वजनेषु पूजिततनुर्मुखस्य नान्या गतिः ॥१२॥

१२ भाषार्थ.—“लक्ष्मी ! तुम मूर्खोंको धन देती हो, विद्वानों से तुम्हारा इतना क्यों द्वेष है ?” इसपर लक्ष्मी उत्तर देती है:—
“न तो मैं किसीसे द्वेष करती हूँ, न मैं चंचला हूँ जैसा लोग मुझे समझते हैं, और न मूर्खोंसे मेरा कोई प्रेम है । मूर्खोंको जो मैं धन देती हूँ इसका कारण सुनो, विद्वान् पुरुष तो सय जगह पूजा जाता है, मूर्खकी तो सिवा मेरे कोई गतिही नहीं है । इसीसे मैं उन्हें धन-दिया करती हूँ । यदि मैं भी उन्हें छोड़ दूँ तो उनका डिकाना कहां लगे ।”

लक्ष्मी चंचला है ऐसा लोग कहा करते हैं इस पर एक कवि कहता है :—

यद्वदन्ति चयलेत्थयज्ञादं नैव दूषणमिदं कमलायाः ।

दूषणं जननिषेहि भवेत्तद्वत्पुत्राणपुरुषाय दक्षी तम् ॥१३॥

६३ भाचार्य :—लोग यह कहा करते हैं कि लक्ष्मी बड़ी चंचला है, एक जगह स्थिर हो कर नहीं रहती ; आज एक के पास है तो कल दूसरे के पास, इसमें भला लक्ष्मीका क्या दोष ? दोष तो लक्ष्मी के पिता समुद्र का है, जिसने उसे एक पुराण पुरुष (बृद्धमनुष्य तथा विष्णु) से व्याह दिया । इसी भाव का रहीम का एक दोहा भी है :—

चपला यह न रहीम धिर सांच कहत सब लोथ ।

पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय ॥

लक्ष्मी और सरस्वती का झगड़ा इस श्लोकमें किसीने बहुत अच्छा दिखलाया है :—

विद्वांसः कृतबुद्धयः सखि ! मम द्वारि स्थिताः नित्यशः ।

श्रीमन्तोऽपि मया विना पशुसमा तस्माद्दहं श्रेयसी ॥

श्रीवाग्देवतयोरमूनि धननान्याकर्ण्य वेधाश्चिर-

दूचे श्रेयतरे उमे यदि भवेदेको विवेको गुणः ॥६४॥

६४ भाचार्य :—लक्ष्मी कहती है :—“सखी सरस्वती, यड़े यड़े विद्वान् और बुद्धिमान् नित्य मेरे (धनियोंके) द्वारपर हाथ फैलाए पाड़े रहते हैं ।” इस पर सरस्वती उत्तर देती है :—“हां ठीक है, किन्तु धनी मनुष्य भी, मेरे (सरस्वतीके) बिना निरे पशु हैं । इस लिये मैं ही बड़ी हूं ।” लक्ष्मी और सरस्वती के इस झगड़ेको सुनकर ग्रहा बहुत देरतक सोचने के बाद बोले :—“दोनों ही अच्छी हैं यदि दोनोंमें विवेक हो तो, बिना विवेक के दोनों में से एक भी श्रेयसा के योग्य नहीं है ।”

किसीके सामने हाथ फैलानेसे अपनी प्रतिष्ठाकी कितनी हानि होती है, इस पर एक कवि अच्छा कहता है —

स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्यतो यदु
आस्य भजेन्मलिनतां किमिदं विचित्रम् ।
गृह्यन् परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥ ६५ ॥

६५ भावार्थ — किसी धनीसे अपने स्वार्थके लिये धन लेते हुए यदि मनुष्यका चेहरा मलिन हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं । मेघ तो समुद्रसे केवल जल और वह भी दूसरोंके लिये लेता है, और केवल इतने ही से वह पूरी तरहसे काला हो जाता है ।

लक्ष्मी और हालाहल विषमें तुलना करता हुआ कोई कवि कहता है —

हालाहल नैव विष, विषं रमा,
जना. परं व्यत्ययमत्र भण्वते ।
निपीय जागर्ति सुखेन त शिव
स्पर्शजिमा मुह्यति निद्रया हरिः ॥ ६६ ॥

६६ भावार्थ — लोगोंका गलत अर्थाल है कि हालाहल विष है । मैं तो यह समझता हूँ कि हालाहल विष नहीं है बल्कि लक्ष्मी विष है । क्योंकि उसे पीकर शिव सदा जागते रहते हैं, और इसके स्पर्शमात्रसे, मुग्ध होकर विष्णु निद्रामें पड़े रहते हैं ।

लक्ष्मी विद्वान् ब्राह्मणोंके पास क्यों नहीं आती इसका कारण किसी कविने निम्नलिखित श्लोकमें अच्छा दिया है :—

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो बल्लभोऽन्येन रोषा—

दाबाल्याद्विप्रवयैः स्ववदनविचरे धारिता वैरिणी मे ।

मेह मे छेदयन्ति प्रतिदिनसमुमाकान्तपूजानिमित्तं ॥ १४ ॥

तस्मात्त्रिभ्रा सदाहं द्विजकुलसदनं नाथ ! नित्यं स्याजामि ॥ १५ ॥

१४ भावार्थ :—विष्णुने लक्ष्मीसे पूछा कि तुम ब्राह्मणोंसे क्यों घृणा करती हो ? उनके पास क्यों नहीं जाती ? इस पर लक्ष्मी उत्तर देती है :—“हे नाथ ! अगस्त्य नामी एक ब्राह्मण था जिसने मेरे पिता समुद्रको उठाकर पी लिया । एक दूसरा ब्राह्मण भृगु नामका हुआ है जिसने मेरे पति विष्णु भगवान्को लातसे मारा । बहुत छोटी उमरसे ही ब्राह्मण लोग मेरी वैरिणी सरस्वतीकी उपासना करते हैं और सर्वदा उसे अपने मुखमें धारण करते हैं । बेलपत्रमें मेरा घास रहता है, उसी बेलपत्रको वे लोग प्रति दिन शिवजीकी पूजाके निमित्त तोड़ते हैं । इन्हीं सब बातोंसे खिन्न होकर मैं ब्राह्मणोंके यहां नहीं रहती ।—

लक्ष्मी पानेसे लोग अहंके अन्धे हो जाते हैं इस बातको कविने कैसे अच्छे ढंगसे नीचे लिखे हुए श्लोकमें कहा है :—

लक्ष्मि ! क्षमस्व घवनोयमिदं दुरुक्त—

मन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन ।

नो चेत्पथं कमलपत्रविशालनेत्रो

नारायणः स्वपिति पन्नग भोगतल्पे ॥ १८ ॥

१८ भावार्थ :—हे लक्ष्मी ! तुम्हारी भक्ति करनेवाले पुरुष

अन्धे हो जाते हैं। यद्यपि इस कथनसे तुम्हारी निन्दा होती है पर है बात सच इससे कहना पड़ता है। इससे ऐसा कहनेके लिये क्षमा चाहता हूँ। यदि तुम्हारी उपासना करनेसे पुरुष अन्धे न होते तो कमलपत्रके समान बड़े बड़े नेत्रवाले विष्णु भगवान् भी, तुम्हारे साथ रहनेसे, क्यों शेषनागके शरीर पर सोते। तुम्हारे साथसे विष्णु भगवान् यड़ी यड़ी आँधवाले होकर भी अन्धे हैं, तभी तो शेषनाग पर सो रहे हैं।

आदर्श करुणरस ।

एक मृगीको किसी व्याघ्राने फन्देमें फँसा लिया है। उसे सम्बोधन करके मृगी करुणाजनक शब्दोंमें कहती है :—

आदाय मासमल्लिखितं स्तनवर्जमंगात्
मा मुञ्च ! यागुरिक ! याहि कुरु प्रसादम् ।
अद्यापि घासकवलप्रसनानभिश्चो
मन्मार्गवीक्षणपरस्तनयो मदीयः ॥६६॥

॥ मावार्थ — हे व्याघ्र ! स्तनोंको छोड़कर मेरे समस्त शरीरसे मास लेकर मुझे छोड़ दे ; इतनी कृपा मुझपर कर ! मेरा छोटा बच्चा अबतक घास खाना नहीं जानता । वह मेरा रास्ता देखता होगा कि मैं आऊँ और वह मेरा दूध पिये । इसलिये मुझे छोड़ दे मैं आऊँ । कितना करुणापूर्ण और हृदयकारक भाव है ।

आदर्श वीररस ।

यह श्लोक वीररसका बहुत अच्छा उदाहरण है । इसके भाव और शब्द दोनों बहुत अच्छे हैं । इस श्लोकमें एक सूखी यह है कि इसके अनुकूल ही शब्दका प्रयोग इसमें ' किया गया है । इसके एक एक पदमें वीर रस टपक रहा है । यह श्लोक जंगनाथ पण्डितराजके भामिनी-विलाससे लिया गया है —

धीरध्वनिभिरलते नीरद ! मे मासिको गर्भ ।

उत्तमदधारणबुद्धया मध्येजठरं समुच्छलति ॥१००॥

१०० भावार्थ—देवादल ! मत गरज, मत गरज । इन अपने गभीर शब्दोंको मत कर ! मेरे एक महीनेका गर्भ है । वह यह समझकर कि कोई मतवाला हाथी चिघाड रहा है, मेरे पेटमें इसलिये उछल रहा है कि बाहर निकल कर इसे पछाड़ें ।

आदर्श कृपण ।

किसी अर्थ पिशाच कृपणके जीवनका चित्र इस श्लोकमें अच्छा खींचा गया है —

जातिर्यातु रसातलं, गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता,-

च्छीलं शैलतटात्पतत्वमिजन सन्दहता बहिना ।

शीर्यै धैरिणि यजुमाशु निपतत्वयोरतु न केवलं,

येनयेन विना गुणास्तृणलवप्राया समस्ता इमे ॥ १०१ ॥

१०१ भावार्थ — "जाति रसातलको चली जाय तो चली जाय हमें कुछ परवाह नहीं है । जितने गुण हैं वे सब पातालसे भी नीचे घरे जाय कोई चिन्ता नहीं है । शील और धैरिप्र पहाड

पर से गिरें और चकना चूर हो जायं, हमें खुशी से मंजूर है । कुटुम्ब का कुटुम्ब आग में जल मरे, अच्छी बात है । धीरता, जो हमारी शत्रु है, उस पर ईश्वर करे वज्रपात हो । हमें तो केवल धन चाहिये, जिसके बिना ये समस्त गुण तिनके के समान हैं ।”

आदर्श दरिद्र ।

इस श्लोक में एक दरिद्र कुटुम्ब का चित्र अच्छा खींचा गया है :—

वृद्धोऽन्धः पतिरेषमचक्रगतः, स्थूणावदोऽयं गृहं
कालोऽभ्यर्णजलागमः, कुशलिनी वत्सल्य वार्तापि नो ।
यत्नात्संचिततैलविन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला,
दृष्ट्वा गर्माभयलसां निजबधूं भ्रूश्चिरं रोदिति ॥ १०२ ॥

१०२ भावार्थ :—पति वृद्ध, अन्धा, तथा रोगी, खाद से रहा है ; घर सब ओर से जीर्ण हो रहा है केवल एक ठूँठ मात्र बच गया है ; बर्सात भी अब आरंभ होनेवाली है ; लड़का परदेश गया है उसकी भी कोई खबर नहीं मिली ; घड़े यत्नसे एक एक गून्द करके घड़े में तेल जमा किया गया था हाय वह भी टूट गया ! लड़केकी वह गर्मबती और हंडिया से पेट निकाले है ! यह सब देखके घर की पुरखिन सास बड़े ज़ोरसे रो रही है ।

दुर्जन और सज्जन ।

किसी छिद्रान्त्रेयी समालोचक से सताया गया एक कवि कहता है :—

अतिरमणीये काव्येऽपि पिशुनो दूषणमन्वेपयति,
अतिरमणीये वपुषि व्रणमिव मक्षिकानिकटः ॥ १०३ ॥

१०३ भावार्थ :—चाहे काव्य या ग्रन्थ कितना ही उत्तम और निर्दोष क्यों न हो किन्तु खल मनुष्य उसमें केवल दोष ही ढूँढ़ेगा । जैसे कि शरीर चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो किन्तु उसे छोड़ कर मक्खियां सिर्फ घाव या फोड़े पर बैठेंगी, अन्यत्र नहीं ।

इसी भाव का एक दूसरा श्लोक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ है । उसे नीचे लिखते हैं :—

कर्णामृतं काव्यरसं विहाय दोषेषु यत्नः सुमहान् खलस्य,
अयेक्षते कैलियनं प्रविष्टः प्रमेलकः कण्ठकः जालमेव ॥ १०४ ॥

१०४ भावार्थ :—दुष्ट मनुष्य अमृतके समान मधुर काव्यमें गुण को छोड़ कर केवल दोष ढूँढ़ने का यत्न करता है । उसे ऊँट किसी सुन्दर उपवन में प्रवेश कर के केवल कंटिले वृक्ष और झाड़ु झंझाड़ु की तलाश करने लगता है ।

कट्ट्यादियों के घाववाणों से बेधा गया कोई हालाहल विष को संशोधन करके कहता है :—

अहमेव भुजः सुदामणानामिति हालाहल ! तात ! मास्मद्वयः ।
ननु सन्ति भयाद्दशानि भूयो भुवनेऽस्मिन् घचनानि दुर्जनानाम्

॥ १०५ ॥

१०५ भावार्थ :—हे हालाहल ! मत घमण्ड करो कि हम्हों जितने कटु और पीड़ा देने वाले पदार्थ हैं सर्वोमें श्रेष्ठ हैं, हमारे मुकाबिले का कोई नहीं है। अरे तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम्हारे समान इस जगत् में दुष्ट पुरुषोंके ध्वन भी हैं, जिनके लगते ही मनुष्य एक घार प्राण रहते भी निर्जीव हो जाता है। इसी भावज्ञी एक उर्ध्व शेर भी है :—

छुरी का, तीर का, तलवार का तो घाँव मरा ।

लगा जो जख्म जवाँ का, रहा हमेशा हिरा ॥

खलोंके वाग्वाणोंसे छेदा गया कोई विपको संयोधन करके कहता है :—

नन्वाश्रयस्तिरियं तव कालकूट !

केनोत्तरोत्तरविशिष्टपदोपविष्टा ।

प्रागर्णयस्य हृदये, वृषलक्ष्मणोऽथ

कण्ठेऽधुना वससि वाचि पुनःखलानाम् ॥ १०६ ॥

१०६ भावार्थ :—हे कालकूट ! एक दूसरेके उपरान्त उत्तम से उत्तम अपना आश्रय स्थान चुननेकी शिक्षा तुमने किससे पाई है। पहले तुम समुद्रके भीतर रहते थे, फिर शिव के कण्ठ में बसने लगे, और आज कल खलोंकी वाणीमें रहते हो ।

इस कलिकाल में सज्जन क्यों दुःख पाते हैं इसका कारण देते हुए किसीने ब्रह्मा कहा है :—

“लोको मयु गजन्मा, कृतकृतकर्मा, न मद्दर्मा,”

इति हेतोरिव कलिना वलिना संपीड्यन्ते साधुः ॥ १०७ ॥

१०७ भावार्थ :—“साधु पुरुष पैदा तो हुए हैं हमारे काल में

और काम करते हैं सत्ययुग का, मेरे युग के अनुसार बिल्कुल आचरण नहीं करते ।” ‘ इसी कारण से गुस्सेमें आकर महा बली कलि साधु सज्जन पुरुषोंको सता रहा है ।

लोग कहा करते हैं कि एलोंका हृदय कैसा कठोर होता है पर यह ठीक नहीं है । खलोंका हृदय नहीं बल्कि सज्जनोंका हृदय कठोर है । इसी पर एक कवि कहता है :—

हृदयानि सतामेय कठिनानीति मे मतिः ।

खलवाग्धिशिखैस्तीक्ष्णैर्मिन्यते न भनाग्यतः ॥ १०८ ॥

१०८ भावार्थ :—मेरा तो यह विचार है कि सज्जनों ही का हृदय कठोर होता है । यदि ऐसा न होता तो वह खलोंके याग्याणोंसे क्यों नहीं छिद जाता । छिदना तो दूर रहा उसमें रेखामात्र भी नहीं लगती ।

फुटकर श्लोक ।

इस श्लोक में एक, मसखरे तथा एक बुढ़िया की मज़ाक़ भरी बातें हैं :—

अधः पश्यसि किं वृद्धे ! पतितं तव किं भुवि ।

रेरे मूढ न जानासि गतं ताम्रण्यमौक्तिराम् ॥ १०९ ॥

१०९ भावार्थ :—हे वृद्धे ! त्वमर झुकाए हुए तू नीचे क्या देख रही है ? क्या ज़मीन पर कुछ गिर पड़ा है, जिसे दूढ़ रही है ? इस पर बुढ़िया भी चुदल भरा जवाब देती है :—रे मूख, क्या तू नहीं जानता कि मेरा जधानीरूपी मोती गिर पड़ा है

उसी को तलाश कर रही है। इसी भावका एक फ़ारसी का शेर भी है :—

चरा ख़म कदां भी ग़स्तन्द पीराने जहां सायब ।

मगर दर खाक भी जूयन्द ऐय्यामे जवानीरा ॥

धनहीन मनुष्योंके अँचे अँचे हौसले बिना धन के किस तरह से पस्त हो जाते हैं इसकी उपमा कविने बहुत अच्छी दी है। उपमा यद्यपि अश्लील है तथापि बहुत ही सार्थक और सानुकूल है :—

उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः ।

बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां कुचा इव ॥ ११० ॥

११० भावार्थ :—दरिद्रोंके हौसले हृदयमें उसी तरह उठने हैं और बिलीन हो जाते हैं, जिस तरहसे कि उच्चकुल की बाल-विधवाओं के कुच उठते हैं और फिर स्पर्ध होकर बिलीन हो जाते हैं।

किसी ने इन्द्रियदमन पर अच्छा कहा है :—

नासी जयी जिता येन नकष्यालसृगाधिपाः ।

जितं तेनैव येनेह दान्तो मारुखिलोकजित् ॥ १११ ॥

१११ भावार्थ :—असल में वह विजयी नहीं है जिसने घड़ियाल, सर्प, अथवा सिंह पर विजय पा ली है। सच्चा विजयी तो वही है जिसने तीनों लोकोंके विजय करनेवाले कामदेव को अपने कायूमें कर लिया है।

इसी भाव का एक उर्दू का शेर भी है :—

नेहंगो अज्ञदहाओ शेर नर मारा तो क्या मारा ।

• बड़े मूजीको मारा नफ्स अम्मायको गर मारा ॥

किसी कवि ने कामदेव की चोर से उपमा देते हुए,
कहा है :—

प्रज्ञा विनाशयत्यादौ प्रविष्टो हृदि मन्मथः ।

दक्षो गेहं समायाति दीपं निर्वाण्य तत्स्वरः ॥ ११२ ॥

११२ भावार्थ :—जय कामदेव हृदयमें प्रवेश करने लगता है
तो पहले बुद्धि को हर लेता है । ठीक है चोर जय घर में घुसने
लगता है तो पहले दिये को बुझा देता है । इसी भावकी एक
फारसीकी शेर भी है :—

इशक चू दरसीना आमद अल्करा अव्वल खूद ।

हुन्दे दाना पर कुनद अव्वल बिरागे दानरा ॥

अपने मन को संवोधन करके कोई कहता है :—

मनः कुत्रोद्योगः सपदि यद् मे शम्यपदवी

नरे वा नार्या वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम् ।

यत्तस्ते ह्रीवर्त्य सकृदपि गतो हास्यपदवी

जनस्तोमे मागास्त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम् ॥ ११३ ॥

११३ भावार्थ :—मन ! तुम्हारा क्या विचार है ? जरा
यत्नाओ तो कहां चले ? किसी पुरुष के पास जाना चाहते हो
अथवा स्त्रीके ? दोनों में से एक के प्रति भी जाना तुम्हारे लिये
अनुचित है । क्योंकि तुम नपुंसक हो और यहां हमने जाओगे ।
इसलिये तुम मनुष्योंके पास न जाकर “ब्रह्म” के पास जाओ ।

तुम्हारा उमका जोड़ है, तुम भी-नपुंसकलिंग हो और वह भी नपुंसकलिंग है । इसलिये तुम्हारी उसकी पट्र जायगी ।

एक मनुष्य ने किसी वेदान्ती से पूछा कि तुम सन्ध्या क्यों नहीं करते । इस पर वह जवाब देता है :—

मृता मोहमयी माना जातो ज्ञानमयः सुत ।

सूतकं धर्षते नित्यं कथं सन्ध्यामुपास्महे ॥ ११४ ॥

११४ भावार्थ :—मोहरूपी माता मर गई है, और ज्ञानरूपी पुत्र पैदा हुआ है । रोज तो हमें सूतक लगा रहता है, सन्ध्या किस तरहसे करें ? अर्थात् जब तक मोहरूपी अन्धकारमें मनुष्य पड़ा हुआ है, जब तक उसे ज्ञानका प्रकाश नहीं मिलता तभी तक वह सन्ध्या इत्यादि के फेरमें पड़ा रहता है । ज्ञान की ज्योति मिलनेपर वह सन्ध्या इत्यादि से परे हो जाता है ।

जाते (बच्ची) की घरर घरर आवाज सुन कर एक कवि कहता है :—

रे रे घरट्ट ! मा रोदीः कंकं न भ्रामयन्त्यमूः ।

कटाक्षश्लेषणादेव कराकृष्टस्य का कथा ॥ ११५ ॥

११५ भावार्थ :—हे घरट्ट (जाते) तुम क्यों रो रहे हो । अरे ये स्त्रिया किम् किस को सिर्फ अपने कटाक्ष मात्र से नहीं घुमातीं । और फिर तुम्हें तो अपने हाथोंसे धक्का खिला रही हैं । तुम्हारा क्या कहना है ।

बख्खसे ही प्रतिष्ठा होती है, बिना बख्खके कोई बात भी नहीं पूछता । इसपर एक कविने अच्छा कहा है !—

चासः प्रधानं खलु योग्यतार्थाः ।

चासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः ।

पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां

दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ॥ ११६ ॥

११६ भावार्थः—चस्त्रही प्रतिष्ठा—का मूल कारण है, बिना चस्त्रवालेको लक्ष्मी बात भी नहीं पूछती । देखिये समुद्रने विष्णुको पीताम्बर इत्यादि उत्तम वस्त्र धारण किये हुए देखकर अपनी लड़की लक्ष्मी उन्हें दी और महादेवको दिगम्बर (नग्न) देख कर उन्हे केवल विष दिया । इसी भावका एक श्लोक मुझे पण्डित महावीर प्रसादजी द्विवेदीसे प्राप्त हुआ है जिसे मैं नीचे लिखता हूँ—

अक्षराणि परीक्ष्यन्तामम्यराडम्यरेण किम् ।

दिगम्यरो महादेवः सर्वज्ञः किन्न जायते ॥

इस असार संसारमें यदि कुछ सार है तो यह ससुरका घर है । इसको किसीने बड़े अच्छे ढङ्गसे कहा है :—

असारे पल्लु संसारे सारं भवशुर मन्दिरम् ।

हरो हिमालये शेते विष्णुः शेते महोदधौ ॥ ११७ ॥

११७ भावार्थः—इस असार संसारमें सार केवल ससुरार है ।

यदि यह बात न होती तो महादेवजी सय स्थानको छोड़कर अपने ससुरके घर हिमालयमें क्यों चास करते और विष्णु भगवान और सय स्थानको त्यागकर अपने भवशुरपुर समुद्रमें

लक्ष्मीजी कमलमें, महादेवजी हिमालयमें, विष्णु भगवान् क्षीर समुद्रमें क्यों सोते हैं—इसपर किसी कविकी अनोखी स्रष्ट है :—

कमले कमला शेने, हरः शेते हिमालये ।

हरिः क्षीरोदधौ शेते, मन्ये मत्स्यपशंकया ॥११८॥

भावार्थः—मैं समझता हूँ खटमलके डरके मारे लक्ष्मी कमलमें सोती है, महादेवजी हिमालय पर सोते हैं और विष्णु भगवान् क्षीर समुद्रमें शयन करते हैं ।

कविता कैसी होनी चाहिये इसपर किसी कविने यड़ा अच्छा कहा है :—

कृपांसवेनार्पतिरोहिनी कुची

रम्यौ रमण्या. कविताक्षराणि च ।

अर्द्धं निगूढानि सुशोभितान्यल

नात्यन्तगूढानि न वा स्फुटान्यपि ॥११९॥

११९ भावार्थः—चोलीसे आधे ढके हुए कामिनीके कुच और कविताके अक्षर तभी शोभा देते हैं जब वे कुछ छिपे और कुछ खुले रहते हैं । विलकुल मुदे अथवा विलकुल खुले कुच और कविताके शब्द शोभा नहीं देते । इसी श्लोकका किसी हिन्दीके कविने अच्छा अनुवाद इस दोहेमें किया है :—

कवि आखर अर तिय सुकुच अघ उघरे सुख देत ।

अधिक ढकेहू सुखद नहिं उघरे महा अहेत ॥

जगन्नाथजीकी मूर्ति काठकी क्यों है इसपर किसी कविकी यही अनोखी स्रष्ट है :—

एका भार्या प्रवृत्तिमुत्तरा, चंचला च द्वितीया,
 पुत्रस्त्वेको भुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।
 शेषः शय्या, शयनमुदघौ, वाहनं पञ्चगारिः,
 स्मारं स्मार स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ॥१२०॥

१२० भावार्थः—विष्णुकी एक स्त्री सरस्वती है जो स्वभाव
 हीसे बड़ी घाचाल है—दिनभर बक बक किया करती है । दूसरी
 स्त्री लक्ष्मी है जो महा चंचला है—एक जगह स्थिर होकर नहीं
 रहती । कामदेव नामक एक पुत्र है जो अपने बशमें नहीं है—
 ससारको विजय करनेमें लगा हुआ है । सोते किसपर हैं ?
 शोपनाग पर । रहनेका स्थान कहां है ? समुद्रमें । वाहन क्या
 है ? सर्पों का शङ्ख गरुड़ । अपने घरका यह सब चरित्र देख
 देखके विष्णु भगवान् काठके हो गये । वही जगन्नाथजी हैं ।



शुद्धिपत्र.

—७१६—

श्लोक

१३

१६

१८

२१

अशुद्ध

शान्ति

क्रुधामहो

त्वदेकमनसः

भूतनिवहाः

आंगन

पेज १२ अन्तिम लाइन

पेज १५ लाइन १० अणु दिणमण रण
कम्मा

पेज १६ लाइन ५

पेज १६ लाइन १८

“जाहुनह”

पौ हिय छोड़ है

वाला

तोयांजलि

स्मित

गृह

विगतस्तन्या

यतिमयवपुः

अन्यजीवप्रमाहन्त !

रही है

शुद्ध

शान्तिं -

क्रुधामहो

त्वदेकमनसः

भूतनिवहः

आंगन

अणुदिणमणरण-
कम्मा

जाहुन

पौमें हियमें छोड़ है

वाला

तोयांजलिः

स्मित

गृह

विगतस्तन्या

युतिमयवपुः

अन्यजीवप्रमां हन्त !

रहा है

पेज ३१ लाइन १७

श्लोक ६७	पत्र	यत्र
पेज ४० लाइन ६	शशांक	शशा
श्लोक ७३	सितवृष	सितवृष
११ ७६	संप्रत्युष्णाशुर्गत	संप्रत्युष्णाशुर्गत
११ ७७	तदन्वेषणपरा !	तदन्वेषणपरा-
११ ८३	युवतिवक्त्र	युवतिवक्त्र
११ ८४	वियोगिनीहृदयमोहित	वियोगिनीहृदयमाहित
	शोक हुताशनम्	शोकहुताशनम्
११ ८५	शीतल	शीतलं
११ ८२	श्रूयताम्	श्रूयताम्
११ १०१	सन्दहता	सन्दहता
११ १०४	कण्ठक जालमेघ	कण्ठकजालमेघ
११ १०५	सुदारुणानामिति	सुदारुणानामिति
पेज ६२ लाइन २	नफ्स	नफ्स



हिन्दीकी उपयोगी पुस्तकें

सप्तसरोज—हिन्दीके सर्व श्रेष्ठ उपन्यास सेवासदनके लेखक श्रीमान् प्रेमचन्द जीकी रचना । इसमें सात अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद गल्प हैं । सबके पढ़ने योग्य हैं । भाषा सरल और मधुर है । अनेक भाषाके विद्वानोंने इस पुस्तककी प्रशंसा की है । कविरंग बहुत ही भावमय सुन्दर सचित्र है । कागज़ छपाई आला दर्जेकी । मूल्य केवल ॥१॥ आना ।

कर्मवीर गान्धीके महत्वपूर्ण लेख और व्याख्यान हममेंगान्धीजीके २० लेख और व्याख्यान हैं । उनका कोई खास लेख या व्याख्यान छूटने नहीं पाया है । गान्धीजीके सिद्धान्त समझ कर अपने जीवनको उच्च बनानेके लिए यह एक ही पुस्तक है । इसे पढ़कर मन पवित्र हो जाता है और हृदयमें सन्तोष उत्पन्न होता है । सरस्वतीने इस पुस्तककी बहुत तारीफ की थी । कागज़ और छपाई बढ़िया । मूल्य केवल १॥ उपहार देने लायक बढ़िया रेसमी जिल्द १॥॥॥

महात्मा शेखसादी—लेखक श्रीमान् प्रेमचन्दजी ।

जगत्प्रसिद्ध महापुरुष शेखसादीका मनोरंजक और उपदेश प्रद जीवन चरित्र, उनका अनूठा भ्रमण वृत्तान्त, उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ गुलिस्तां और बोस्तांकी उदाहरणों सहित आलोचना । सादीकी ऐसी अच्छी अच्छी कहावतें और नीति कथाएँ हैं कि पढ़कर सदा स्मरण रखने की इच्छा होती है । दाम १॥

ऐतिहासिक लेख संग्रह—लेखक श्रीयुक्त रामकुमार गोयनका । इसमें इतिहास सम्बन्धी ६ निबन्ध हैं । इन लेख बहुत सी उपयोगी बातें हैं । सरस्वती माडर्न रिव्यू आदि पत्रिकाओं ने बहुत तारीफ की है । निबन्ध प्रेमियों के काम चीज़ है । पुस्तक में कई चित्र हैं । दाम ॥१॥

नेत्रोन्मीलन नाटक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक मित्रबन्धुओं की अनूठी रचना । इस नाटक में पुलिस के हथकड़ी और अत्याचारों का सच्चा वर्णन है । इसमें दिखाया गया कि वकील मुकद्दमे कैसे चलाते, झूठे गवाह कैसे गढ़ते । दिन दहाड़े न्याय की आंखों में कैसे धूल झाँकते हैं और किस प्रकार एक झूठा मुकद्दमा बड़े से बड़े न्यायालय को भी धोखा सकता है । इसमें उर्दू, गंवारी तथा अन्य कितनी ही भाषाओं में मजेदार नमूने मिलेंगे । मूल्य केवल ॥२॥

परीक्षा गुरु—लेखक लाला श्रीनिवासदास । हिन्दी उपन्यासों में बेजोड़ शिक्षाप्रद उपन्यास है । इसे पढ़कर आप संसार में ठगाता नहीं और दुराचार से बचा रहता है । ३ पन्ने की मोटी पुस्तक दाम सिर्फ ॥३॥

रणधीर प्रेम-मोहिनी नाटक—हिन्दी में जो अच्छे स्वतन्त्र नाटक हैं उनमें इसकी गणना की जाती है । इस आपको प्रेम रस की चाशनी भी चपने को मिलेगी । मूल्य ॥३॥

मिलने का पता— हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता